Chapter-9

नवम अध्याय

गोविन्द गिल्ला भाई का आचार्यत्व

प्राक्कथन

गोविन्द गिल्ला भाई के कृतित्व के मूलभुत रूप कवित्व के अध्ययन के पश्चात उनके कृतित्व के प्रौढ़ एवं प्रधान रूप आचार्यत्व का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। पूर्ववर्ती अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व के कई रूप हैं जिनमें से कुछ का सम्बन्ध रीति-आचार्यों की परम्परा के साथ है तथा कुछ का सम्बन्ध आधुनिक आचार्यों की परम्परा के साथ है। भारतेन्दु द्विवेदी युग की संक्रमण सीमा पर होने वाले कवि आचार्य गोविन्द गिल्ला भाई के कृतित्व में रीतिकाल और आधुनिक काल की विशेषताओं का समान रूप से प्राप्त होना ऐतिहासिक दृष्टि से स्वाभाविक ही कहा जायेगा। परन्तु यहां यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि कवित्व के समान गोविन्द गिल्ला भाई का आचार्यत्व मूलत: रीतिकालीन ही है, क्योंकि उनके आचार्यत्व में जो आधुनिक विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं, उन्हें उनके आचार्यत्व की मूलभुत विशेषता नहीं कहा जा सकता। नवीन युग की आवश्यकता आदि के अनुरूप उनका रीतिकालीन आचार्यत्व कुछ व्यापक अवश्य हो गया है। अत: प्रस्तुत अध्याय में गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व के मूलभुत रूप रीतिकालीन आचार्यत्व का ही अध्ययन किया जा रहा है। उनके आचार्यत्व की व्यापकता का अध्ययन आगे स्वतंत्र अध्याय में किया जायेगा,

क्योंकि उनके आचार्यत्व का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत अध्याय की सीमा में सम्भव नहीं हो सकता । अत: प्रस्तुत अध्याय में गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व के मूलभूत रूप रीतिकालीन आचार्यत्व का अध्ययन निम्नलिखित क्रम में किया जा सकता है :

१- आचार्य शब्द की व्याख्या
२- हिन्दी आचार्यों का वर्गीकरण
३- गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व का स्वरूप एवं वर्गीकरण
४- गोविन्द गिल्ला भाई का अलंकार-निरूपण
५- गोविन्द गिल्ला भाई का नायकादि भेद-निरूपण
६- गोविन्द गिल्ला भाई का शेष काव्यांग-विषय-निरूपण
७- उपसंहार

आचार्य शब्द की व्याख्या

संप्रति आचार्य शब्द किसी विषय के विशेषज्ञ, किसी सिद्धान्त के प्रवर्तक तथा शिक्षक आदि के अर्थ में सामान्यत: व्यवहृत होता है । हिन्दी साहित्य में यह शब्द साहित्य शास्त्र या समीक्षा के सिद्धान्तों के प्रवर्तक, व्याख्याता आदि के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है । प्राचीन काल में मूलत: यह शब्द उस प्रधान शिक्षक के लिए प्रयुक्त होता था जो वेदाभ्यास कराता था ।[१] मनुस्मृति में आचार्य शब्द की व्याख्या इस प्रकार से की गयी है :

> उपनीय तु य: शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विज: ।
> संकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ।[२]

यास्क के निरुक्त में भी इस शब्द की जैसी व्याख्या की गयी है उससे भी यही सिद्ध होता है कि उस समय यह शब्द उस शिक्षक के लिए प्रयुक्त होता था

१- तुलनीय है : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, जिल्द २,भाग १,पी०वी०काणे,पृ० २२३,३२४
२- मनुस्मृति २।१४० ।

जो अपने शिष्य के आचरण या चरित्र का निर्माता होता था(आचारं ग्राहयति) जो दक्षिणा प्राप्त करता था या शब्दार्थ की व्याख्या करता था (आचिनोति अर्थान्)तथा जो अपने शिष्यों की बुद्धि को विकसित करता था[1] । (आचिनोति बुद्धिमिति वा)[2] आगे चल कर यह शब्द स्वतंत्र दार्शनिक सिद्धान्तों के संस्थापकों के लिए प्रयुक्त होता मिलता है, जैसे शंकराचार्य आदि तथा काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के संस्थापकों के लिए ही नहीं वरन् व्याख्याताओं के लिए भी यह शब्द व्यवहृत होने लगता है । इसीलिए जहां आनन्दवर्धन आदि स्वतंत्र काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के प्रवर्तकों के लिए यह शब्द प्रयुक्त मिलता है वहीं विश्वनाथ आदि को भी आचार्य शब्द से अभिहित किया जाता है । हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल में जब कि अनेक कवियों ने काव्य-शास्त्र के सिद्धान्तों को हिन्दी में उतारा तथा उनकी व्यख्या आदि भी की, तब भी आचार्य शब्द केवल संस्कृत के आचार्यों के लिए प्रयुक्त होता था, हिन्दी के आचार्यों के लिए नहीं । परन्तु आधुनिक काल में हिन्दी में एक ओर यह शब्द अंग्रेजी शब्द `प्रोफेसर` के पर्यायवाची शब्द के रूप में तथा दूसरी ओर काव्य-शास्त्र-प्रणेता मध्यकालीन कवियों तथा प्रतिष्ठित समीक्षकों के लिए प्रयुक्त होता है ।

परन्तु यहां यह उल्लेखनीय है कि मध्यकालीन शास्त्रकार कवियों ने न तो अपने आपको आचार्य कहा है और न उनके समकालीन कवियों ने उन्हें आचार्य शब्द से अभिहित किया है । आधुनिक काल में जब हम इन शास्त्रकार कवियों के लिए आचार्य शब्द का प्रयोग करते हैं और वह भी एक विशिष्ट परंपरा और प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए पारिभाषिक अर्थ में - तो यह आवश्यक हो जाता है कि आचार्य शब्द की ऐसी व्याख्या की जाय या उसकी ऐसी परिभाषा दी जाय कि जिससे परंपरानुसार विकसित अर्थ से भिन्न सुनिश्चित पारिभाषिक अर्थ स्पष्ट हो सके । क्योंकि यह तर्क संमत एवं उचित नहीं कहा जाता कि काव्य-शास्त्र-प्रणेता कवियों को तो आचार्य कहा जाय और संगीत, ज्योतिष, वैद्यक आदि शास्त्र के प्रणेता कवियों या अकवियों को आचार्य न कहा जाय । जब किसी भाषा के

१- तुलनीय है : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, जिल्द २, भाग १,पी०वी०काणे, पृ०३२३ ।

२- निरुक्त, १।४

शास्त्रीय-साहित्य का अध्ययन किया जाता है तब दृष्टि उसके शास्त्रीय साहित्य पर होनी आवश्यक है, उस शास्त्र के लेखक कवि हैं या कवि नहीं हैं यह तथ्य गौण ही रहता है। तथा जैसे हिन्दी के शास्त्रीय-साहित्य के विद्यार्थी के लिए उसका प्राचीन काव्य-शास्त्रीय-साहित्य महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार अन्य सभी शास्त्रों का साहित्य भी महत्वपूर्ण है। हिन्दी के काव्य साहित्य के विद्यार्थी के लिए जिस प्रकार सभी प्रकार का काव्य साहित्य चाहे वह चारणों द्वारा लिखा गया है चाहे संतों और साधुओं तथा कवियों, महाकवियों, राजकवियों द्वारा लिखा गया है, महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार हिन्दी के शास्त्र-साहित्य के विद्यार्थी के लिए सभी प्रकार का शास्त्र-साहित्य महत्वपूर्ण है चाहे वह कवियों द्वारा लिखा गया है या अन्य किसी के द्वारा, तथा चाहे वह काव्य-शास्त्रीय है या अन्य किसी शास्त्र से संबंधित। परन्तु हिन्दी-साहित्य के इतिहासों में हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य में से काव्य-शास्त्रीय साहित्य का ही परिचय मिलता है या किसी प्रमुख कवि द्वारा लिखे गये संगीत आदि विषयों के ग्रंथ का उल्लेख मिलता है जैसे देव की चर्चा के प्रसंग में उनके संगीत विषयक ग्रंथ का उल्लेख आदि। वस्तुत: हिन्दी साहित्य के इतिहास हिन्दी के काव्य-साहित्य तथा काव्य-शास्त्रीय-साहित्य के इतिहास मात्र हैं/क्योंकि हिन्दी के इतिहासकार मूलत: काव्य-समीक्षक हैं, अत: उनकी दृष्टि काव्य और काव्यशास्त्र तक ही सीमित रहना स्वाभाविक है।

परन्तु हिन्दी की शोध-रिपोर्टों को देखने तथा प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहालयों के ग्रंथों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में प्रभूत मात्रा में काव्यशास्त्र के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों पर साहित्य लिखा गया था, जिसका क्रमबद्ध इतिहास न केवल आज की महान् आवश्यकता है, वरन् हिन्दी के शास्त्रकार कवियों के समूचे कृतित्व के सम्यक् मूल्यांकन के लिए भी इसकी परम आवश्यकता है। हिन्दी आज केवल ललित-साहित्य की ही भाषा नहीं है, वह ज्ञान, विज्ञान की समर्थ वाहिका भी है। अत: उसकी शास्त्रीय साहित्य की परंपरा के विषय में जागरूक रहना अत्यंत आवश्यक है, तथा विशेष रूप से इसलिए कि मध्यकाल से ही प्रचुर विविध शास्त्र-साहित्य हिन्दी में मिलता है, और उसका अधिकांश

कवियों द्वारा ही लिखा गया है[१]। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने काव्य-शास्त्र के हिन्दी में लिखे जाने के जिन ऐतिहासिक कारणों का उल्लेख किया है[२] वे हिन्दी में सभी प्रकार के शास्त्रीय साहित्य के लिखे जाने के ऐतिहासिक कारण कहे जा सकते हैं। आशय यह कि अनेक ऐतिहासिक कारणों से मध्यकाल में ही हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा बन गयी थी,[३] जिसके कारण अनेक शास्त्रीय विषयों पर हिन्दी में प्रचुर साहित्य लिखा गया है। अत: हिन्दी के शास्त्रीय-साहित्य की व्यापक भूमिका में ही काव्य-शास्त्रीय साहित्य का समुचित मूल्यांकन हो सकता है, तथा क्योंकि हिन्दी के काव्य शास्त्रकार कवियों को हिन्दी के विद्वानों ने आचार्य शब्द से अभिहित किया है[४] और यह शब्द इसी अर्थ में बहुत कुछ रूढ़ भी हो गया है, अत: हिन्दी के सभी शास्त्रकार कवियों को या लेखकों को भी आचार्य शब्द से अभिहित किया जाना चाहिए। तात्पर्य यह कि जबकि एक विशिष्ट प्रकार के शास्त्र के लेखकों या कवियों को आचार्य कहा जाता है तो उसी प्रकार के अन्य सभी शास्त्रों के लेखकों को भी आचार्य कहा जाना चाहिए। यदि प्रत्येक शास्त्रकार को आचार्य शब्द से अभिहित किया जाय तो -

१- हिन्दी की शास्त्र-साहित्य-परंपरा का समुचित मूल्यांकन हो सकेगा।

२- हिन्दी की सामान्य शास्त्र-साहित्य की परंपरा की भूमिका में काव्य-शास्त्रकार कवियों का समुचित मूल्यांकन हो सकेगा।

३- यदि किसी एक ही व्यक्ति ने काव्य और काव्यशास्त्र के प्रणयन के साथ साथ अन्य काव्यशास्त्र से संबद्ध या असंबद्ध शास्त्रों की रचना की है तो उन शास्त्रों का अध्ययन न केवल उसके कवित्व एवं आचार्यत्व के वास्तविक स्वरूप के उद्घाटन में सहायक सिद्ध होगा, वरन् उसके समूचे व्यक्तित्व के सभी अंगों की व्याख्या तथा मूल्यांकन में भी सहायक सिद्ध होगा।

१- विशेष विवेचन के लिए देखिए - अध्याय तृतीय।

२- तुलनीय है - हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ०३२६।

३- तुलनीय है - शौरसेनी की प्राचीन परंपरा, डा०सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ०७५।

४- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, सं०डा०नगेन्द्र, षष्ठ भाग, पृ०२६८।

४- अंत में गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व के अध्ययन के लिए समुचित भूमिका प्रस्तुत हो सकेगी, क्योंकि वे मूलत: काव्य-शास्त्रकार होते हुए भी अन्य कई शास्त्रों के प्रणेता भी हैं।

अत: काव्य-शास्त्रकार कवि के अर्थ में रूढ़ आचार्य शब्द को शास्त्रकार के सामान्य अर्थ में स्वीकृत करना परम आवश्यक प्रतीत होता है, परंतु यहां यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी के इस शास्त्रकार शब्द को संस्कृत के शास्त्रकार शब्द का पूर्ण पर्याय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि हिन्दी के शास्त्र ग्रंथ संस्कृत के शास्त्र-ग्रंथों के बहुत कुछ समान होते हुए भी बिलकुल एक से नहीं कहे जा सकते। हिन्दी के शास्त्रों का स्वरूप तथा उसकी परंपरा अपनी भिन्न ऐतिहासिक स्थिति पर निर्भर होने के कारण संस्कृत के शास्त्र के स्वरूप तथा परंपरा से बहुत कुछ भिन्न है। इसीलिए हिन्दी की मध्यकालीन शास्त्र-परंपरा के संदर्भ में मौलिक चिंतन और शिक्षकता आचार्यत्व के उत्कर्ष के मानदंड कहे जा सकते हैं, आचार्यत्व के आधार नहीं। यदि इन्हें आचार्यत्व के अनिवार्य आधार के रूप में स्वीकृत किया जाता है तो तथाकथित रीति आचार्य भी आचार्य नहीं कहे जा सकते।

हिन्दी आचार्यों का वर्गीकरण

जैसा कि कहा जा चुका है कि हिन्दी के इतिहास ग्रंथों में, हिन्दी में लिखे गये सभी प्रकार के शास्त्रीय साहित्य का परिचय नहीं मिलता, केवल काव्य-शास्त्र-विषयक साहित्य का अध्ययन हुआ है, अत: उन्हीं के आधार पर हिन्दी के आचार्यों का वर्गीकरण - विविध काव्यांग निरूपक आचार्य, रस निरूपक आचार्य आदि के रूप में किया गया है[१]। परन्तु हिन्दी में काव्य शास्त्र के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों का प्रणयन भी हुआ है[२], तथा जिस तर्क के आधार पर काव्य शास्त्र निरूपक आचार्यों को आचार्य कहा जाता है उसी तर्क के आधार पर अन्य शास्त्रों के लेखकों को भी आचार्य कहा जा सकता है, अत: हिन्दी आचार्यों

१- तुलनीय है, हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्ठ भाग, सं०डा०नगेन्द्र, पृ०२६८-६६।

२- तुलनीय है, हिन्दी रीति साहित्य, डा० भगीरथ मिश्र, पृ०१५।

का उक्त वर्गीकरण स्वीकार्य नहीं कहा जा सकता । परंतु अभी तक हिन्दी में लिखे गये अन्यान्य शास्त्रों से संबद्ध साहित्य के प्रकाशित न होने के कारण तथा तत्संबंधी प्रामाणिक सामग्री के अभाव में हिन्दी के शास्त्रकार आचार्यों का वैज्ञानिक दृष्टि से वर्गीकरण करने का प्रयास प्रस्तुत संदर्भ में संभव नहीं कहा जा सकता । अत: मूलत: गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व को दृष्टि में रख हिन्दी के आचार्यों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

१- केवल काव्य शास्त्रकार आचार्य ।
२- काव्य शास्त्र तथा तत्संबंधी अन्य शास्त्रकार आचार्य ।
३- काव्य-शास्त्र तथा काव्य-शास्त्र से संबद्ध अथवा और असंबद्ध शास्त्रकार आचार्य ।

हिन्दी में प्रथम प्रकार के आचार्यों को रीति-आचार्य कहा जाता है तथा उन्हीं का विशेष अध्ययन हुआ है, परंतु देव जैसे कवियों को जिन्होंने संगीत आदि विषयों पर भी शास्त्रीय ग्रंथ लिखे हैं, प्रथम प्रकार के आचार्यों की कोटि में परिगणित नहीं किया जा सकता । गोविन्द गिल्ला भाई भी ऐसे ही आचार्य हैं, जिन्होंने काव्य-शास्त्र के अतिरिक्त कवि शिक्षा, नीति, व्याकरण, कोष आदि लिखे हैं, जो काव्य-शास्त्र से संबंधित शास्त्र कहे जा सकते हैं, अत: देव आदि आचार्यों के समान गोविन्द गिल्ला भाई को द्वितीय प्रकार के आचार्यों की कोटि में परिगणित किया जा सकता है । हिन्दी में इस प्रकार के अनेक आचार्य प्रसिद्ध हैं तथा गुजरात में कनक कुशल, कुवर कुशल, लखपत सिंह, आदित राम आदि अनेक कवि हुए हैं जिन्होंने काव्य-शास्त्र से संबद्ध अनेक शास्त्रों का हिन्दी में प्रणयन किया है, परन्तु संप्रति हिन्दी आचार्यों के उक्त वर्गों का विधिवत् अध्ययन नहीं किया जा सकता, क्योंकि जिनके विषय में सामग्री उपलब्ध है उनका अध्ययन रीति आचार्यों के रूप में हिन्दी के वरिष्ट विद्वानों द्वारा किया जा चुका है, तथा जिनके विषय में अभी सूचना मात्र ही उपलब्ध है उनका अध्ययन संभव नहीं, अत: हिन्दी आचार्यों के उक्त भेदों में से द्वितीय प्रकार के आचार्य के रूप में गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व का अध्ययन किया जा सकता है ।

गोविन्द गिल्ला भाई का आचार्यत्व

गोविन्द गिल्ला भाई के कृतित्व के अध्ययन के प्रसंग में उनके आचार्यत्व के स्वरूप एवं विकास आदि का अध्ययन किया जा चुका है,[1] तथा उनके आचार्यत्व के अध्ययन की आधारभुत साम्ग्री का परिचय भी प्रस्तुत किया जा चुका है[2]। गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व की आधारभुत साम्ग्री के परिचय से स्पष्ट हो जाता है कि उसका एक अंश ऐसा है जो ग्रंथ रूप में है तथा दूसरा अंश अपूर्ण, स्फुट-संकलन आदि के रूप में है। जो साम्ग्री ग्रंथ रूप में है उसे मुख्य आधार और जो संकलन रूप में है उसे गौण आधार माना जा सक्ता है। मुख्य आधार की साम्ग्री यहां तालिका रूप में वर्णित की जा रही है जिसके आधार पर प्रस्तुत अध्ययन की सीमाओं का निर्धारण तथा गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व की व्याप्ति स्पष्ट की जा सके।

तालिका - आचार्यत्व की आधारभुत मुख्य साम्ग्री - विवरण

ग्रंथ का नाम	वर्णित शास्त्र का नाम	रचनाकाल
१ लक्षण बत्तीसी	नीति-शास्त्र	सं० १९२९
२ भुषण मंजरी	कवि-शिक्षा	सं० १९४५
३ शृंगार षोडशी	कवि-शिक्षा	सं० १९४५
४ भक्ति कल्पद्रुम	भक्ति-शास्त्र	सं० १९४५
५ वक्रोक्ति विनोद	काव्य-शास्त्र	सं० १९५४
६ शृंगार सरोजिनी	काव्य-शास्त्र	सं० १९६५
७ षटऋतु वर्णन	काव्य-शास्त्र	सं० १९६६
८ श्लेष चंद्रिका	काव्य-शास्त्र	सं० १९६८
९ शब्द विभुषण	काव्यशास्त्र	सं० १९७४ ।
१० गोविन्द हजारा	काव्य-शास्त्र	सं० १९७५

१- देखिए : अध्याय षष्टम् ।

२- ,, : अध्याय पंचम् ।

११ अन्योक्ति अरविन्द	काव्य-शास्त्र	सं० १६७८
१२ रत्नावली रहस्य	काव्य-शास्त्र	अनिश्चित
१३ अलंकार अंबुधि	काव्य-शास्त्र	अज्ञात

प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने काव्य शास्त्र के साथ साथ नीति, भक्ति तथा कविशिक्षा पर भी शास्त्रीय शैली में ग्रंथ लिखे हैं, जिससे सिद्ध हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई हिन्दी के उन आचार्यों की परम्परा में आते हैं जिन्होंने काव्य-शास्त्र के साथ-साथ काव्य-शास्त्र से संबद्ध शास्त्रों पर भी रचना की है तथा जिन्हें ऊपर द्वितीय प्रकार के आचार्य कहा गया है।

गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व के सभी पक्षों का अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में संभव न होने के कारण उनके आचार्यत्व के प्रमुख पक्ष, काव्य-शास्त्रकारत्व का ही अध्ययन किया जा रहा है, शेष सामग्री के आधार पर उनके आचार्यत्व की व्यापकता का अध्ययन आगे किया जायेगा।

रीतिकालीन हिन्दी आचार्यों में से कुछ ऐसे आचार्य अवश्य मिलते हैं जिन्होंने गोविन्द गिल्ला भाई के समान काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों के साथ-साथ काव्य-शास्त्र से सम्बद्ध अन्य विषयों पर भी शास्त्र-ग्रंथ लिखे हैं, जैसे केशव, देव, कुंवर कुशल आदि तथा उनके भी आचार्यत्व का प्रमुख अंग काव्य-शास्त्र रहा है। परन्तु केवल काव्य शास्त्र के चर्चित विषयों के आधार पर उनका जो वर्गीकरण - जैसे विविध काव्यांग निरूपक, रस निरूपक आचार्य आदि किया गया है[१] - वह पूर्ण प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उसकी किसी भी कोटि में गोविन्द गिल्ला भाई और उन जैसे अन्य आचार्यों को पूर्णत: समाविष्ट नहीं किया जा सकता। गोविन्द गिल्ला भाई ने मुख्यत: अलंकार और नायिका-भेद-विवेचन ही किया है, परन्तु इसके साथ साथ उन्होंने

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्टम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २६८।

काव्य-शास्त्र के अन्य विषयों का भी अच्छी तरह विवेचन किया है, अत: गोविन्द गिल्ला भाई को केवल अलंकार-निरूपक या नायिका-भेद-निरूपक आचार्य नहीं कहा जा सकता । साथ ही चिन्तामणि, श्रीपति, देव, दास आदि के समान उन्होंने काव्य के सभी अंगों का विवेचन नहीं किया है अत: उन्हें विविधांग- निरूपक आचार्य भी नहीं कहा जा सकता । यद्यपि विविधांग-निरूपक आचार्यों के विषय में यह सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती कि कितने विषयों या काव्यांगों का विवेचन-कर्ता आचार्य, विविधांग-निरूपक आचार्य कहा जाय,[१] परन्तु चिन्तामणि, कुलपति, श्रीपति आदि आचार्यों द्वारा चर्चित विषयों की व्यापकता देखते हुए कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई को इन आचार्यों की श्रेणी में स्वीकृत नहीं किया जा सकता । निम्नलिखित तालिका से यह स्पष्ट हो जायेगा कि गोविन्द गिल्ला भाई ने काव्य-शास्त्र के कितने अंगों का विवेचन किया है और कितना किया है, तथा उन्हें हिन्दी के विद्वानों द्वारा मान्य रीति-आचार्यों के उक्त वर्गीकरण के किसी भी वर्ग में विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से समाविष्ट नहीं किया जा सकता ।

तालिका: गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा चर्चित काव्यशास्त्र के विषय

विवरण

विषय	ग्रंथनाम और हस्तलिखित प्रति संख्या और संदर्भ					
	वक्रोक्ति विनोद	अलंकार अंबुधि	श्लेष चंद्रिका	शब्द विभूषण	गोविन्द हजारा	शृंगार सरोजिनी
ह०प्र०सं०	१५५	१६५	१५५	१७३	२०३	१९१
काव्य प्रशंसा पृ०	२	१	५७	१		
काव्य प्रयोजन	१	१		१		
काव्य फल	२	२				

१- तुलनीय है : हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० २२ ।

विषय	वक्रोक्ति विनोद	अलंकार अंबुधि	श्लेष चंद्रिका	शब्द विभूषण	गोविन्द हजारा	शृंगार सरोजिनी
काव्य कारण	४	२				
काव्य लक्षण	४	२			३	
काव्य शरीर	४	३	५८			
काव्य दशांग	५					
काव्य भेद	६					
दृश्यकाव्य लक्षण	६					
श्रव्य काव्य ,,	६					
श्रव्यकाव्य भेद	६					
उत्तमकाव्य लक्षण	७					
मध्यमकाव्य ,,	९					
अधमकाव्य ,,	१०					
अधम काव्यभेद	१०					
गद्य लक्षण	६					
गद्य भेद	६					
पद्य लक्षण	७					
कवित्त सवैया विचार					१६से३२	
भाषा लक्षण					२	
हिन्दी भाषा लक्षण					२	
हिन्दी भाषा भेद					२	
बानी,उक्ति विचार					८ से१६	
तुक विचार					३ से ८	
रस प्रशंसा			५८			
रस लक्षण						१
रस भेद						१
शृंगार रस वर्णन						९१
संयोग शृंगार						९२

विषय	वक्रोक्ति विनोद	अलंकार अंबुधि	श्लेष चंद्रिका	शब्द विभूषण	गोविन्द हजारा	शृंगार सरोजिनी
संयोग शृंगार						६८
वियोग शृंगार						१०७
दश दशा						६२
भाव लक्षण						६२
हाव लक्षण						
हाव भेद						६३से६८
आलंबन लक्षण						१
नायिका लक्षण						२
नायिका भेद कथन						२
स्वकीया वर्णन						२से१४
परकीया वर्णन						१४से३३
सामान्या वर्णन						३३से३५
अनियमित नायिका						३५से४०
द्वादश नायिका						४२से५७
उत्तमादिनायिका						५७से५८
पद्मिन्यादिनायिका						५८से६०
दिव्यादिनायिका						६१से६२
सखी वर्णन						६२ से ६३
सखीकर्मवर्णन						६३से६४
दूतीवर्णन						६५से६७
दूतीकर्मवर्णन						६७से७०
नायकलक्षण						७०
नायक भेद						७०से८६
सखा वर्णन						८६ से ६१

विषय	वक्रोक्ति विनोद	अलंकार अंबुधि	श्लेष चंद्रिका	शबूद विभूषण	गोविन्द हजारा	शृंगार सरोजिनी
रसअलंकारमहत्व		३से४				
अलंकार महत्व		३	५८	१		
अलंकार लक्षण	१४	४	५६	२		
अलंकारभेद	१५	४	५६	२		
शबूदालंकारलक्षण	१४	४	५६			
अर्थालंकारलक्षण	१५	४	५६			
उभयालंकारलक्षण	१५	४	५६			
वक्रोक्ति वर्णन	१६ से ४८					
उपमा वर्णन		५ से११				
श्लेष वर्णन			६० से१७३			
शेषालंकार वर्णन				से१६	३से२५०	

तथा अन्योक्ति अरविन्द ह०प्र०सं०१५४ में अन्योक्ति और रत्नावली रहस्य,ह०प्र०सं०१५५ में रत्नावली अलंकारों की चर्चा मिलती है। एवं षट् ऋतु वर्णन नामक रचना ह०प्र० सं० १५५ में उद्दीपन वर्णन हैं।

प्रस्तुत तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने नायिका भेद और अलंकारों का सविस्तार विवेचन किया है, अत: उन्हें नायिका-भेद-निरूपक और अलंकार-निरूपक आचार्य कहा जा सकता है, परन्तु नायिका-भेद और अलंकारों के साथ साथ उन्होंने अन्य ऐसे अनेक विषयों का विवेचन किया है जो विविधांग निरूपक आचार्यों द्वारा ही हुआ है। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई को रीति आचार्यों के मान्य वर्गीकरण के किसी एक वर्ग में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। अत: उन्हें किसी एक वर्ग का आचार्य न मान कर स्वतंत्र रूप से उनके आचार्यत्व का विवेचन किया जा रहा है। उक्त तालिका के आधार

पर अध्ययन-सौकर्य के लिए प्रस्तुत अध्ययन को निम्नलिखित तीन वर्गों में बांटा जा सकता है :

१- गोविन्द गिल्ला भाई का अलंकार-निरूपण
२- गोविन्द गिल्ला भाई का नायक-नायिका-भेद-निरूपण
३- गोविन्द गिल्ला भाई का शेष-काव्य-विषय-निरूपण

गोविन्द गिल्ला भाई का अलंकार-निरूपण

गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व के अध्ययन के प्रसंग में स्पष्ट किया जा चुका है कि चमत्कार-प्रधान काव्य-सर्जन गोविन्द गिल्ला भाई का काव्यादर्श था, साथ ही उनके काव्य की यह प्रधान विशेषता है। अत: स्वाभाविक है कि अलंकार-निरूपण गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व का भी प्रधान अंग सिद्ध हो । काव्य-शास्त्र से संबद्ध इनके निम्नलिखित सात ग्रंथों में अलंकार निरूपण ही प्रधान रूप से मिलता है : १- वक्रोक्ति विनोद, २-श्लेष चंद्रिका, ३-रत्नावली रहस्य, ४- अन्योक्ति अरविन्द, ५- शब्द बिभूषण, ६- अलंकार अंबुधि, ७- गोविन्द हजारा। ~~, ये अलंकार-निरूपक ग्रंथ हैं~~ ।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद ने एक स्थान पर हिन्दी के अलंकार-ग्रंथों की चर्चा करते हुए गोविन्द गिल्ला भाई रचित भूषण मंजरी का उल्लेख किया है[1] परन्तु यह ग्रंथ काव्य के अलंकारों के विषय में न हो कर नायिका के आभूषणों के विषय में है ।[2]

गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा रचित अलंकार निरूपक ग्रंथों की उक्त सूची से ही स्पष्ट हो जाता है कि अलंकारों की ओर उनका अधिक रुझान था । आशय यह कि जिस प्रकार उन के काव्य में अलंकारों का प्रचुर प्रयोग मिलता है उसी प्रकार अत्यन्त विस्तार के साथ अलंकारों की चर्चा भी मिलती है । इसीलिए

१- हिन्दी साहित्य का अतीत - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, द्वितीय भाग, पृ०३५३।
२- तुलनीय है : गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २३५ छं० २ ।

कवित्व के समान अलंकार-प्रियता उनके आचार्यत्व की भी प्रमुख विशेषता कही जा सकती है तथा इसीलिए गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व के अध्ययन में अलंकार-निरूपण के अध्ययन को प्राथमिकता दी गयी है। अलंकार-निरूपण गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व का प्रधान अंग अवश्य है। परन्तु विशुद्ध सैद्धान्तिक दृष्टि से रीतिकाल के अन्य तथाकथित अलंकारवादी आचार्यों - जैसे केशव आदि के सामान - उन्हें अलंकारवादी आचार्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि हिन्दी के ये आचार्य संस्कृत के अलंकारवादी आचार्य - भामह, दंडी के समान अन्य काव्यांगों को अलंकार में अंतर्भुक्त नहीं मानते।[१] परन्तु इस दृष्टि से कि इन आचार्यों ने जयदेव, अप्पय दीक्षित के समान अलंकारों का विस्तृत विवेचन कर प्रकारान्तर से अलंकार वाद की ओर अपनी प्रवृत्ति प्रदर्शित की है,[२] इसलिए इन्हें अलंकारवादी कहा जाय तो गोविन्द गिल्ला भाई को भी अलंकारवादी आचार्य कहा जा सकता है। क्योंकि उन्होंने अलंकार-निरूपण की ओर अधिक प्रवृत्ति दिखाई है।

जिस प्रकार संस्कृत के अलंकारवादी आचार्यों के समान गोविन्द गिल्ला भाई तथा उन जैसे अलंकार को प्राधान्य देने वाले हिन्दी के आचार्यों को अलंकार वादी आचार्य नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार किसी विशिष्ट नवीन सिद्धान्त के संस्थापक के अर्थ में संस्कृत के आचार्यों के समान इन्हें आचार्य भी नहीं कहा जा सकता।[३] क्योंकि इन आचार्यों में मौलिक सिद्धान्त - उद्‌भावना की क्षमता दृष्टिगोचर नहीं होती अपितु संस्कृत के काव्य सिद्धान्तों को अपनी रुचि के अनुसार संगृहीत करने की प्रवृत्ति ही प्रधान रूप से दृष्टिगोचर होती है।[४] जिस प्रकार प्रधान रूप से हिन्दी के विविधांग निरूपक आचार्यों ने मम्मट और विश्वनाथ के ग्रंथों को अपने ग्रंथों के प्रधान उपजीव्य ग्रंथ के रूप में स्वीकृत किया है उसी प्रकार अलंकार निरूपक आचार्यों ने प्रधान रूप से जयदेव का अनुसरण किया है।[५] हिन्दी

१-हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग-सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २८६।

२- वही, पृ० २८६।

३- तुलनीय है : वही, पृ० २८८।

४- ,, : हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २२५।

५- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग -सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २८८।

के परवर्ती अलंकार-निरूपक आचार्यों ने अपने अलंकार निरूपण में जयदेव के अतिरिक्त संस्कृत के मम्मट आदि अन्य आचार्यों का तो आधार लिया ही है, हिन्दी के प्राचीन आचार्य केशव, मतिराम आदि का भी आधार लिया है।[१] गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार-निरूपण में हिन्दी के अलंकारनिरूपक परवर्ती आचार्यों की उक्त विशेषता तो मिलती ही है, साथ ही हिन्दी के परवर्ती अलंकार निरूपकों के समान[२] उनके अलंकार निरूपण का मुख्य आधार जयदेव या उनके अनुकर्ता हिन्दी के प्राचीन आचार्य ही थे। जैसे सोमनाथ के अलंकार निरूपण में जयदेव के साथ साथ जसवंत सिंह का और भूषण[३] के अलंकार-निरूपण में ~~मतिराम~~ मतिराम का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार निरूपण में रीतिकाल के प्राय: सभी पूर्ववर्ती आचार्यों का ही नहीं, वरन् अपने समकालीन हिन्दी के आचार्यों का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आगे अध्ययन से सिद्ध होगा कि गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार-निरूपण पर ही नहीं काव्यशास्त्र के अन्य विषयों के विवेचन में भी संस्कृत के आचार्यों की अपेक्षा हिन्दी के आचार्यों का प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर होता है। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई का आचार्यत्व संस्कृत के आचार्यों की परम्परा की तुलना में हिन्दी के आचार्यों की परम्परा के अधिक निकट है। रीतिकाल की आचार्य-परम्परा की अंतिम कड़ी होने के कारण गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व का हिन्दी के आचार्यों की परम्परा के अधिक निकट होना स्वाभाविक भी है।

गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार-निरूपण के विषय में विशेष रूप से तथा आचार्यत्व के अन्य अंगों के विषय में सामान्य रूप से यह ज्ञातव्य है कि यद्यपि समय की दृष्टि से गोविन्द गिल्ला भाई आधुनिक काल की परिसीमा में ही आते हैं परन्तु काव्य-शास्त्र-विवेचन की प्रवृत्ति, शैली, आदि की दृष्टि से वे

१- हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ३४६, ३५० ।

२- वही, पृ० २४८ ।

३- हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० १६ ।

रीतिकालीन आचार्य परम्परा के अधिक निकट हैं। यद्यपि गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व में कुछ आधुनिक आचार्यत्व की विशिष्टताएं दृष्टिगोचर होती हैं, जैसे विवेचन में ऐतिहासिक आधुनिक दृष्टि, तुलनात्मक अध्ययन दृष्टि आदि। उदाहरणार्थ गोविन्द हजारा में भाषा, उक्ति, तुक, छंद आदि के विवेचन में उक्त आधुनिक आचार्यों की विशेषताएं देखी जा सकती हैं।[१] परन्तु रीतिकालीन आचार्य परम्परा की विशेषताओं के प्रमुख रूप से इनके विवेचन आदि में मिलने के कारण मूलत: इन्हें रीति आचार्य ही कहा जा सकता है। हिन्दी के अलंकार निरूपक आचार्यों के अलंकार निरूपण के विषय में सामान्यत: कहा जाता है कि उसका मुख्य आधार जयदेव कृत चंद्रलोक तथा उसके अलंकार प्रकरण पर लिखित अप्पय दीक्षित की कुवलयानन्द टीका ही है।[२] परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार निरूपण के विषय में इस प्रकार के किसी मुख्य आधार की ओर निश्चित रूप से इंगित नहीं किया जा सकता। केवल इतना कहा जा सकता है कि इन्होंने मुख्य रूप से रीतिकालीन आचार्यों के अलंकार निरूपण को अपने विवेचन के आधार के रूप में स्वीकृत किया है तथा बीच बीच में संस्कृत के आचार्यों का भी आधार ग्रहण किया है।[३]

गोविन्द गिल्ला भाई की अलंकार विषयक धारणा

संस्कृत काव्य-शास्त्र के इतिहास को अलंकार विषयक धारणा के आधार पर विद्वानों ने तीन काल खंडों में विभाजित किया है : १- ध्वनि पूर्व काल, २- ध्वनि काल, ३- ध्वन्युत्तर काल।[४] ध्वनि पूर्व काल में श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य दो स्वतंत्र काव्य विधाओं के रूप में स्वीकृत होने के कारण उनका अध्ययन क्रमश: अलंकार शास्त्र और नाट्य शास्त्र के अंतर्गत स्वतन्त्र रूप से होता था।[५]

१- तुलनीय है : गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३ पृ० ६ से ८, २२ आदि।

२- हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ३४८।

३- तुलनीय है : गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३, पृ०६, २५, ३० आदि।

४- हिन्दी अलंकार साहित्य - ओम प्रकाश, पृ० ४५।

५- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ३२७।

इसीलिए इस काल में अलंकार, अलंकार-शास्त्र का प्रमुख विषय था, जिसके अंतर्गत रस आदि की चर्चा होती थी। ध्वनि काल में अभिनव गुप्त ने सर्वप्रथम काव्य के कर्त्ता और ग्राहक दोनों की दृष्टि से श्रव्य और दृश्य काव्य का समन्वेत विवेचन किया[१] और अलंकार-शास्त्र और नाट्य-शास्त्र के स्वतंत्र अलंकार-सिद्धान्त और रस-सिद्धान्त को एक व्यापक सिद्धान्त के रूप में सिद्ध कर अलंकार और रस की सम्मिलित और सानुपातिक व्याख्या की। आशय यह कि इस काल में ध्वनि-पूर्व काल के समान काव्य-शास्त्र में अलंकार के सार्वभौम शासन को अमान्य घोषित कर दिया गया और उसकी नये सिरे से ध्वनि-रस-सापेक्ष्य व्याख्या की गयी तथा काव्य के एक अंग के रूप में उसे स्वीकार किया गया।[२] ध्वन्युत्तर काल में अलंकार विषयक धारणा में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ[३] और ध्वनि कालीन सिद्धान्तों का ही व्याख्यान इस काल में होता रहा।

हिन्दी अलंकार ग्रंथों में अलंकारों का विवेचन प्रधानत: लक्षणोदहरण के रूप में ही मिलता है। अलंकार के स्वरूप के विषय में रीतिकालीन आचार्य इतने अधिक उदासीन थे कि अनेक आचार्यों ने तो अलंकार-सिद्धान्त की विवेचना तो दूर रही अलंकार की कोई सामान्य परिभाषा भी नहीं दी है।[४] कुछ विद्वानों ने हिन्दी अलंकार ग्रंथों में अलंकार की सामान्य परिभाषा के अभाव का कारण जन समूह में अलंकार के अर्थ का व्यापक रूप से प्रचलित एवं सर्व विदित होना माना है। डा० रसाल का अभिमत है कि किसी ने भी अलंकार शब्द की व्याख्या, व्युत्पत्ति एवं परिभाषा - जो सर्वथा सब पर लागू हो तथा स्वाभाविक, व्यापक, वैज्ञानिक और सर्वांग शुद्ध हो - नहीं दी है। अस्तु हम कह सकते हैं कि कदाचित् अलंकार के रूप, गुण एवं लक्षणादि से हमारे यहां का वायुमंडल ऐसा भरा हुआ था तथा जन समूह उससे ऐसा पर्याप्त परिचित था कि इन रीतिकालीन आचार्यों ने उसका

१- तुलनीय है : वही, पृ० ३२८।
२- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६६।
३- ,, : वही, पृ० ६६।
४- ,, : वही, पृ० ६१।

परिचय देने की आवश्यकता ही न समझी थी।[१] वस्तुस्थिति जो भी हो परन्तु रीतिकालीन आचार्यों ने सामान्यत: अलंकार का सामान्य लक्षण नहीं दिया है। कुछ आचार्यों ने इस प्रकार का प्रयास भी किया है/परन्तु उनके लक्षण संस्कृत के आचार्यों के लक्षणों पर ही आधारित हैं।[२] केशव के अतिरिक्त हिन्दी के जिन प्रमुख आचार्यों ने अलंकार की परिभाषा देने का प्रयास किया है, उन्होंने जयदेव, अप्पय दीक्षित आदि के साथ साथ मम्मट और विश्वनाथ का भी आधार लिया है। उदाहरणार्थ अलंकार की परिभाषा का ही नहीं, वरन् समूचे अलंकार निरूपण में दास, सोमनाथ और प्रतापसाहि ने अप्पय दीक्षित को अपने मूल आधार के रूप में स्वीकृत किया है तथा चिन्तामणि और कुलपति मिश्र ने क्रमश: विश्वनाथ और मम्मट को अपना आधार माना है।[३]

गोविन्द गिल्ला भाई की अलंकार विषयक मान्यता अलंकारवादी भामह और केशव तथा ध्वनिवादी मम्मट और कुलपति दोनों से प्रभावित है। आशय यह कि अलंकार की परिभाषा तथा अन्य काव्यांगों में उसके स्थान के विषय में गोविन्द गिल्ला भाई ध्वनिवादी आचार्यों के अधिक निकट हैं, परन्तु अलंकार के महत्व एवं आवश्यकता के साथ साथ उसके प्रयोग और विवेचन की दृष्टि से वे अलंकारवादी आचार्यों से अधिक प्रभावित हैं। ध्वनिवादी आचार्यों के समान उन्होंने अलंकृत काव्य को अधम काव्य कहा है, जिसकी परिभाषा उन्होंने इस प्रकार दी है :

> व्यंग्य बिन शब्दार्थ में चमत्कार सरसाय।
> गोविंद वाको कहत हैं अधम काव्य कविराय।[४]

अलंकार की परिभाषा में कवि ने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है :

१- अलंकार पीयूष, पूर्वार्ध - डा० रामशंकर शुक्ल रसाल, पृ० ३४।

२- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६१।

३- तुलनीय है : हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी, पृ०७३६।

४- वक्रोक्ति विनोद ह० प्र०सं० १५५ पृ० १० छं० ३१ तथा ध्वन्यालोक ३।४२ ।

शब्द अर्थ तें काव्य में रस अरु व्यंग्य विहीन
चमत्कार सरसाय सो अलंकार सम्चिीन ।[१]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने ध्वनिवादी आचार्यों के समान अलंकृत-काव्य को अधम काव्य कहा है तथा रस और व्यंग्य विहीन शब्दार्थ से उत्पन्न चमत्कार को अलंकार माना है ।

ध्वनिवादी आचार्यों ने काव्यत्व के लिए रसादि की अनिवार्यता मानी है तथा तद्विषयक विवक्षा के अभाव में रसादि की शून्यता परिकल्पित की है, कहा गया है कि :

रसभावादिविषयविवक्षाविरहे सति ।
अलंकारनिबंधो य: स चित्रविषयो मत: ।[२]

इसीलिए आचार्य मम्मट ने काव्य की परिभाषा में 'अनलंकृति पुन: क्वापि'[३] लिख कर काव्य में अलंकार की अनिवार्यता घोषित की है । परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ध्वनिवादियों की इस मान्यता के विपरीत काव्य में रस के समान ही अलंकार की अनिवार्यता मानते हैं/एक स्थान पर रस और अलंकार की युगपत् आवश्यकता, प्रतिपादित करते हुए कहा है कि :

स्वर बिन राग जैसे श्रोन में सुहात नांहि,
लौन बिन अन्न जैसें भोकता कों भाय ना ।
गोविन्द कहत तैसें बपु में विचार देखो,
रस अलंकार बिन कविता सुहाय ना ।[४]

इतना ही नहीं, अलंकार के महत्व का प्रतिपादन करते हुए गोविन्द गिल्ला भाई ने केशव दास के समान ही कहा है कि :

१- शब्द विभुषण ह०प्र०सं०१७३, पृ० २ छं० ७ ।

२- ध्वन्यालोक ३।४३ वृत्ति ।

३- काव्यप्रकाश १।८ ।

४- अलंकार अंबुधि ह०प्र०सं०१६५, पृ०४ छं० १४ ।

कविता बनिता बपुष वर भूषण बिन नहि भाय ।[१]

तथा अन्यत्र लिखा है कि :

भावभरी रस रीतिभरी पुनि धारित सर्व सगुन अपारी ।
गोविंद तो हू न भूषण के बिन भाय भली कविता वनिता री ।[२]

स्पष्ट है ये उक्तियां भामह की उक्ति :

न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्[३]

तथा केशव की प्रसिद्ध उक्ति

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुवरन सरस सुवृत्त ।
भूषण बिनु न बिराजई कविता वनिता मित्त ।[४]

पर ही आधारित हैं जो गोविन्द गिल्ला भाई पर अलंकारवादी आचार्यों का प्रभाव सिद्ध करती हैं ।

जिस प्रकार संस्कृत में विश्वनाथ[५], वैद्यनाथ[६] आदि कुछ आचार्यों ने काव्य-पुरुष के रूपक के द्वारा काव्य के विविध अंगों के परस्पर सम्बन्ध तथा महत्व का प्रतिपादन किया है उसी प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई ने कविता कामिनी के रूपक के द्वारा काव्य के विविध अंगों का महत्व स्पष्ट किया है । इस रूपक में अलंकार के विषय में जो कुछ कहा गया है, उस पर यहां विचार किया जा सकता है । कवि ने लिखा है कि :

१- अलंकार अंबुधि ह०प्र०सं०१६५, पृ० ३, क्रं० ११ ।
२- वही, पृ० ३ क्रं० १२ ।
३- काव्यालंकार - भामह १।१३ ।
४- कविप्रिया - केशवदास ५।१
५- तुलनीय है : साहित्य दर्पण - विश्वनाथ १।३ वृत्ति ।
६- ,, : प्रतापरुद्र यशोभूषण - वैद्यनाथ २।२५ ।

शब्द अर्थ देह तामें शब्द अग्र भाग पुनि,
पृष्ट भाग अर्थ और जीव रस राजे हैं।
सुन्दरता व्यंग्य पुनि भास ध्वनि भाखियत,[१]
उकति अपूर्व सोइ बसन विराजे हैं[२]।
गुन वृत्ति रीति गुन दोष सबै दूषण हैं,
उपमादि अलंकार भूषण सो भ्राजे हैं।
गोविंद कहत ऐसी काव्य कामिनी की काय,
विमल विशाल वर सुन्दर सो छाजे हैं[३]।

कविता कामिनी का इस प्रकार का रूपक सामान्यत: रीतिकालीन आचार्यों की रचनाओं में नहीं मिलता। गोविन्द गिल्ला भाई की कल्पना का आधार ग्वाल कवि के ग्रंथ रसिकानन्द का निम्नलिखित छंद है, जिसकी कुछ पंक्तियां तुलनार्थ यहां उद्धृत की जा रही हैं :

शब्द अर्थ देह शब्द अग्र भाग सोहियत,
अर्थ जो समर्थ पृष्ट भाग पहिचानिये।
अतिशय व्यंग्य तासों कहे ध्वनि सोई जीव,
जुक्ति जे विलक्षण ते वसन प्रमानिये
ग्वाल कवि ओजादिक तीनों गुन गुनियत,
भूषण ते भूषण सुभाषित बखानिये[४]।

स्पष्ट है कि ध्वनिवादी आचार्यों के समान तथा ग्वाल के प्रभावानुसार गोविन्द गिल्ला भाई ने मूलत: अलंकार की स्थिति कटक कुंडलादिवत्[५] मानी है। परन्तु अन्यत्र रस के समान अलंकार को भी वे अनिवार्य कह चुके हैं[६]।

१- पाठान्तर : सुन्दरता व्यंग्य पुनि शोभा सुखदाय ध्वनि।
२- ,, : शब्द के भूषण सो वस्त्र बेश बाजे हैं।
३- अलंकार अंबुधि ह०प्र०सं०१९५ पृ० ३ छं० १०।
४- प्रस्तुत छंद पूज्य पिताजी कविरत्न गोविन्द चतुर्वेदी के मुख से सुना है, ग्वाल की उक्त रचना उनके पास सुरक्षित है।
५- तुलनीय है : अंगाश्रितास्त्वलंकारा: मन्तव्या कटकादिवत् -ध्वन्यालोक २।६ ।
६- अलंकार अंबुधि ह०प्र०सं०१९५,पृ०४ छं० १४।

काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार की स्थिति को स्पष्ट करते हुए गोविन्द गिल्ला भाई ने लिखा है शब्दालंकार कविता कामिनी के वस्त्र हैं और अर्थालंकार आभूषण[१] ।

शब्दालंकार और अर्थालंकार का यह भेद अर्थालंकार का शब्दालंकार की अपेक्षा सौन्दर्यातिशय सिद्ध अवश्य करता है परन्तु उसकी अनिवार्यता नहीं तथा शब्दालंकारों को अर्थालंकारों के समान काव्य सौन्दर्योत्कर्षक न मानते हुए भी गोविन्द गिल्ला भाई ने उन्हें अधिक मूलभुत अलंकार अवश्य सिद्ध कर दिया है। आशय यह कि आभुषण कामिनी के सौन्दर्य को वस्त्रों की अपेक्षा अधिक बढ़ाते हैं, परन्तु वस्त्र, आभूषणों की अपेक्षा अधिक आवश्यक होते हैं, क्योंकि निर्वस्त्र नारी का दर्शन भी शास्त्र द्वारा निषिद्ध है। अर्थात् शब्दालंकार का अभाव दोष का कारण है, अत: वे प्रकारान्तर से अनिवार्य सिद्ध हो जाते हैं। जबकि अर्थालंकार काव्य-सौन्दर्य के उपकारक होने के कारण आवश्यक कहे जा सकते हैं, परन्तु उनकी स्थिति कवि की विवक्षा पर निर्भर होने के कारण उन्हें प्रकारान्तर से भी अनिवार्य नहीं कहा जा सकता।

आशय यह कि यद्यपि गोविन्द गिल्ला भाई भाव भरी, रस-रीति भरी कविता में भी अलंकार आवश्यक मानते हैं तथा रस और अलंकार की उन्होंने समान रूप से आवश्यकता प्रतिपादित की है, परन्तु मूलत: सैद्धान्तिक दृष्टि से उनकी अलंकार विषयक धारणा ध्वनिवादी आचार्यों के समान है, केवल शब्दालंकार के अभाव में दोष की संभावना इंगित कर रस-ध्वनि के सौन्दर्य के लिए शब्दालंकारों को प्रकारान्तर से अनिवार्य मान लिया है। नग्न नारी का सौन्दर्य जैसे सुसभ्य संस्कृत समाज में स्वीकार्य नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार गुण, वृत्ति के आधार भुत अनुप्रासादि अलंकार गोविन्द गिल्ला भाई ने अनिवार्य माने हैं। वस्तुत: गोविन्द गिल्ला भाई की अलंकार विषयक उक्त धारणा

१- अलंकार अंबुधि ह०प्र०सं० १९५, पृ०३ छं० १० ।

अलंकृत काव्य परम्परा के कारण भी मानी जा सकती है, जिसके कारण ध्वनिवादी मम्मट की काव्य परिभाषा के अनलंकृति पुन: क्वापि[1] तथा जयदेव के

अंगी करोति य: काव्यं शब्दार्थावनं लकृति ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती[2] ।

जिन विभिन्न कथनों में एक प्रकार से समन्वय सिद्ध हो जाता है । हिन्दी के प्राचीन रीति आचार्यों ने मम्मट के अनुसार काव्य-परिभाषा दी है, उन्होंने मम्मट के 'अनलंकृति पुन: क्वापि' को अनुक्त ही छोड़ दिया है, तथा परोक्ष रूप से उक्त समन्वय की ओर इंगितकर दिया है जो गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं में स्पष्टतर हो जाता है । इस प्रकार यह भी स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई का आचार्यत्व हिन्दी के रीति आचार्यों द्वारा अधिक प्रभावित है, संस्कृत के आचार्यों द्वारा इतन नहीं ।

संस्कृत और हिन्दी के अलंकार-शास्त्रीय-ग्रंथों में समय समय पर विभिन्न दृष्टियों से अलंकारों के वर्गीकरण का प्रयास किया गया है[3] । परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने शब्द, अर्थ और शब्दार्थगत चमत्कार के आधार पर अलंकारों का सर्व सामान्य अति प्रचलित वर्गीकरण शब्दालंकार,[4] अर्थालंकार और उभयालंकार के रूप में ही किया है,[5] अन्य किसी प्रकार या रूप में अलंकारों के वर्गीकरण का प्रयास उनमें नहीं मिलता ।

एक ही छंद में जहां अनेक अलंकारों का प्रयोग मिलता है वहां किस अलंकार को प्रधान माना जाय, इस विषय में गोविन्द गिल्ला भाई ने लिखा है कि :

१- काव्यप्रकाश - आचार्य मम्मट, १।४ ।

२- चन्द्रालोक - जयदेव १।८ ।

३- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६२ से ६४ ।

४- अलंकार अंबुधि ह०प्र०सं० १६५ पृ० ४ छं० २० से २२ ।

५- वही, पृ० ४ छं० १८ से २०, शब्द विभूषण ह०प्र०सं० १७३, पृ०२ छं० ८,९ ।

ज्यों नृप के दरबार में सादन अधिक सुहाय ।
तदपि राजा रहत जित सोई मुख्य गिनाय ।
तैसें एकहि छंद में अलंकार बहु होय ।
तदपि कवि आशय लखी मुख्य मानिये कोय ।[1]

स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई के उक्त दोहे पद्माकर के निम्नलिखित दोहों पर आधारित हैं, जिनका आधार आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने बैरीसाल के दोहों को सिद्ध किया है[2]:

शब्दहुं तें कहुं अर्थ तें कहुं दुहुं तेंउर आनि ।
अभिप्राय जिहि भांति जहं अलंकार सो मानि ।
अलंकार इक थलहि में समुझि परैं जु अनेक ।
अभिप्राय कवि को तहां वहै मुख्य गनि एक ।
जा विधि एकै महल में बहु मंदिर इक मान ।
जो नृप के मन में रुचै गनियतु वही प्रधान ।[3]

पद्माकर के उक्त कथन का कुछ विद्वानों ने कुछ भिन्न अर्थ लगाया है[4] और इन दोनों में अलंकार की परिभाषा आदि देखने का प्रयास किया है[5], परंतु वस्तुत: ये दोहे अलंकार-शास्त्र में अलंकार-विवेचन के एक सामान्य अनुशासन का ही विधान करते हैं, जो गोविन्द गिल्ला भाई के उक्त दोहों से भी स्पष्ट है । पद्माकर के दोहों के साथ गोविन्द गिल्ला भाई के उक्त दोहों को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने पद्माकर के विचार को ही नहीं वरन् उनके नृप महलके दृष्टान्त को भी यथावत् स्वीकार कर लिया है ।

१- वही, पृ० ४ छं० १५, १६ ।
२- तुलनीय है : पद्माभरण ,भूमिका - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० २९ ।
३- पद्माभरण छं० २, ३, ४ ।
४- देखिए : हिन्दी अलंकार साहित्य - डा० ओम् प्रकाश, पृ० १८३ ।
५- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६१ ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई अपनी अलंकार विषयक मूलभूत धारणाओं के सम्बन्ध में मुख्यत: ध्वनिवादियों के अनुगामी हैं, परन्तु उन्होंने संस्कृत के ध्वनिवादी आचार्यों की अपेक्षा हिन्दी के ध्वनिवादी आचार्यों का अधिक अनुसरण किया है, जिसे कवि ने अनेक स्थानों पर स्वीकृत भी किया है।[१]

गोविन्द गिल्ला भाई का अलंकार विवेचन

गोविन्द गिल्ला भाई ने सात ग्रंथों में अलंकारों का विवेचन किया है। उनमें से निम्नलिखित पांच ग्रंथ ऐसे हैं जिनमें एक एक अलंकार का ही विवेचन मिलता है :

१- वक्रोक्ति विनोद, २- श्लेष चंद्रिका, ३- रत्नावली रहस्य, ४- अन्योक्ति अरविन्द, ५- अलंकार अंबुधि।

इन ग्रंथों में से अंतिम को छोड़ कर शेष सभी ग्रंथों के नामों से ही स्पष्ट है कि उनमें क्रमश: वक्रोक्ति, श्लेष, रत्नावली और अन्योक्ति का विवेचन है। अंतिम ग्रंथ के अपूर्ण होने के कारण उपमालंकार का विवेचन भी अपूर्ण है। इस ग्रंथ के नाम तथा शब्दालंकार आदि के रूप में अलंकारों के वर्गीकरण के पश्चात् कवि की निम्नलिखित प्रतिज्ञा से स्पष्ट हो जाता है कि कवि इस ग्रंथ में शब्दालंकार अर्थालंकार और उभयालंकारों का विवेचन करना चाहता था। कवि की प्रतिज्ञा है :

बरनत हैं कवि कुल सबै सो हम बरनत चाहि।[२]

परन्तु किन्हीं कारणों से कवि इस ग्रंथ को पूरा नहीं कर सका था। इसीलिए इसमें ग्रंथ की प्रस्तावना के साथ उपमालंकार का ही अधूरा विवेचन मिलता है।

१- तुलनीय है : अलंकार अंबुधि ह०प्र०सं० १६५ पृ० ५ छं० २३।
२- वही।

एक एक अलंकार का विवेचन करने वाले उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त शब्द विभूषण और गोविन्द हजारा नामक दो ग्रंथ और हैं जिनमें अलंकार अंबुधि के उपमालंकार को छोड़ कर शेष ग्रंथों में चर्चित अलंकारों के साथ और भी अनेक शब्दालंकार और अर्थालंकारों का विवेचन है। गोविन्द हजारा में वक्रोक्ति, श्लेष और रत्नावली के साथ साथ निम्नलिखित अलंकारों का विवेचन और प्राप्त होता है-

१-अनुप्रास, २- यमक सिंहावलोकन के सहित, ३- छेकापह्नुति, ४- यथासंख्य, ५- परिसंख्या, ६- व्यतिरेक, ७- मुद्रा, ८- पिहित, ९- सूक्ष्म, १०- कारनमाला, ११- एकावली, १२- सार, १३- विवृतोक्ति, १४- गूढोक्ति, १५- गूढोत्तरा, १६- लोकोक्ति, १७- छेकोक्ति, १८- पहेलिका, १९- कूटकाव्य, २०- वाक्यछल, २१- वहिर्लापिका, २२- अन्तर्लापिका, २३- प्रश्नोत्तरा, २४- शासनोत्तरा, २५- एकानेकोत्तरा, २६- चित्र।

उक्त सभी अलंकारों के साथ साथ शब्द विभूषण ग्रंथ में निम्नलिखित अलंकारों का और वर्णन मिलता है -

१- व्याघात, २- मुक्तकेशी, ३- विरोधाभास, ४- पुनरुक्तिवदाभास ५- अन्योक्ति।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने सभी ग्रंथों में ३४ अलंकारों का वर्णन किया है, यदि `अलंकार अंबुधि` में आये उपमालंकार के अपूर्ण विवेचन को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो इनके द्वारा विवेचित कुल अलंकारों की संख्या ३५ होती है।

गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा चर्चित अलंकारों की उक्त नामावली से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने रीति आचार्यों द्वारा विवेचित शताधिक अलंकारों में से अनेक प्रमुख अलंकारों को छोड़ दिया है, इतना ही नहीं वरन् स्वयं जिन अलंकारों का उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रचुर प्रयोग किया है उनको भी छोड़ दिया है। उदाहरणार्थ उत्प्रेक्षा, संदेह, अपह्नुति, प्रतीप आदि अनेक अलंकार हैं जिनका इनकी रचनाओं में प्रचुर प्रयोग मिलता है, परन्तु उनका

विवेचन उन्होंने अपने अलंकार-ग्रंथों में नहीं किया है । इसी प्रकार हिन्दी में अत्यधिक प्रचलित अलंकार जैसे रूपक, अतिशयोक्ति, विभावना, विशेषोक्ति, आदि को भी कवि ने छोड़ दिया है । किसी निश्चित् प्रमाण के अभाव में निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता कि गोविन्द गिल्ला भाई ने इन अलंकारों को अपने अलंकार-ग्रंथों में क्यों स्थान नहीं दिया है, परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य आदि के अध्ययन के पश्चात् यह अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने इन अलंकारों को अत्यधिक प्रचलित होने के कारण तथा उनकी दृष्टि में अत्यधिक सरल होने के कारण भी छोड़ दिया होगा, क्योंकि इनका विवेचन तो सभी अलंकार ग्रंथों में सामान्य रूप से मिल जाता है । अत: उन्होंने उन अलंकारों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया था जो अप्रचलित तथा जटिल भी थे । जटिल अथवा कष्टसाध्य अलंकारों का प्रयोग गोविन्द गिल्ला भाई ने अपनी काव्य कृतियों में भी खूब किया है, अत: उन्हीं अलंकारों का उनके द्वारा विवेचन स्वाभाविक ही कहा जा सकता है ।

गोविन्द गिल्ला भाई ने जिन अलंकारों पर स्वतंत्र ग्रंथ लिखे हैं, उनमें उन अलंकारों के भेदोपभेदों की विस्तृत चर्चा मिलती है, साथ ही उन्होंने इस बात का सकारण उल्लेख भी किया है कि वह अलंकार विशेष शब्दालंकार आदि के किस वर्ग का अलंकार है । परन्तु शब्द विभूषण तथा गोविन्द हजारा में, जहां हिन्दी के सामान्यत: मान्य शब्दालंकार और अर्थालंकारों की चर्चा की गयी है, वहां अलंकारों का शब्दालंकार आदि के रूप में वर्गीकरण नहीं किया गया है, इन ग्रंथों में प्रथम शब्दालंकारों तथा तत्पश्चात् अर्थालंकारों का विवेचन किया गया है । परन्तु शब्द विभूषण में पुनरुक्तिवदाभास अलंकार को, जिसे सामान्यत: हिन्दी के आचार्यों ने शब्दालंकार माना है,[१] गोविन्द गिल्ला भाई ने अर्थालंकारों के बीच में चर्चित कर प्रकारान्तर से उसे अर्थालंकार मान लिया है[२]। गोविन्द गिल्ला भाई ने इस अलंकार की जो परिभाषा दी है वह स्पष्टत: भिखारीदास की परिभाषा से प्रभावित है, उन्होंने लिखा है-

---

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ०४५४ ।

२- शब्द विभूषण, ह०प्र०सं०१७३, पृ०८६, छं०४१ ।

भाखत पद पुनिरुक्ति सो पै पुनुरुक्ति न होय।[१]

जबकि भिखारीदास का कथन है -

कहत लौं पुनरुक्ति जो पै पुनरुक्ति न होय।[२]

भूषण ने भी अपने शिवराज भूषण में इस अलंकार की चर्चा की है,[३] परन्तु जैसा कि रसाल जी ने कहा है कि इस अलंकार की चर्चा हिन्दी के मुख्य मुख्य उपलब्ध काव्यालंकार शास्त्र के ग्रंथों में केवल दास तथा भूषण के ग्रंथों में ही मिलती है,[४] सत्य नहीं है। अन्य आचार्यों ने भी इसकी चर्चा की है, साथ ही चिन्तामणि ने जो इसका लक्षण दिया है, वह दास, भूषण आदि के लक्षणों से अधिक स्पष्ट भी है।[५] गोविन्द गिल्ला भाई ने इस अलंकार की जिस प्रकार चर्चा की है उससे स्पष्ट नहीं होता कि उन्होंने इस अलंकार को अर्थालंकार माना है या शब्दालंकार। परन्तु अर्थालंकारों के बीच में इसकी चर्चा होने के कारण इसे उनके अनुसार अर्थालंकार ही कहा जा सकता है।[६] संस्कृत के आचार्यों में से रुय्यक ने इसे अर्थालंकार माना है। परन्तु हिन्दी के आचार्यों ने इसे शब्दालंकार ही माना है।[७] डा० रसाल ने इसे अर्थालंकार मानते हुए भी इसके ऐसे दो भेदों की कल्पना की है, जिसमें से एक का संबंध शब्दालंकार से रहे और दूसरे का अर्थालंकार से।[८]

इसी प्रकार श्लेष और वक्रोक्ति अलंकारों को हिन्दी के प्राय: सभी आचार्यों ने शब्दालंकार माना है,[९] परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने इन दोनों

१- शब्द विभूषण, ह०प्र०सं०१७३, पृ०८६, छं०४१।

२- काव्य निर्णय, सं०आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ०२१०।

३- अलंकार पीयूष, पूर्वार्ध, डा०रामशंकर शुक्ल 'रसाल', पृ०२२२।

४- वही।

५- हिन्दी साहित्य कोश, पृ०४५४।

६- वही।

७- वही।

८- अलंकार पीयूष, पूर्वार्ध, डा०रामशंकर शुक्ल 'रसाल', पृ०२२२-२२३।

९- हिन्दी साहित्य कोश, पृ०७६०, ६६५।

अलंकारों को उभयालंकार माना है[१]।

वक्रोक्ति अलंकार के विषय में लिखा गया है कि "रुय्यक तथा जयदेव को छोड़कर अन्य बाद के आचार्यों ने इसे शब्दालंकार माना है। हिन्दी में इस अलंकार की स्थिति स्पष्ट नहीं है। केशव, जसवंत सिंह, भूषण तथा मतिराम आदि ने इसे अर्थालंकार के अंतर्गत रखा है। चिन्तामणि, कुलपति, सोमनाथ तथा दास ने शब्दालंकार के रूप में स्वीकार किया है। पर इसके लक्षणों उदाहरणों में अस्पष्टता है, जिससे यह कहा नहीं जा सकता कि इन्होंने इसे शब्दालंकार समझा है या अर्थालंकार। प्राय: दोनों वर्गों के आचार्यों के लक्षण उदाहरण समान प्रकार के हैं[२]।" परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने वक्रोक्ति को स्पष्टत: उभयालंकार कहा है। कदाचित् हिन्दी में इस अलंकार की शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों के रूप में चर्चा होने के कारण या दोनों विचारधाराओं में सविवेक समन्वय स्थापित करने के कारण, गोविन्द गिल्ला भाई ने इसे उभयालंकार मान लिया है। उन्होंने इस अलंकार का लक्षण देते हुए लिखा है कि-

उभयालंकृत मांहि कवि कहत सबै वक्रोक्ति[३]।

परन्तु श्लेष को उभयालंकार कहने से पूर्व उन्होंने उसके कारण पर भी प्रकाश डाला है, तथा लिखा है कि -

कोउ गिनत यह श्लेष कों शब्द मांहि सुखदाय।
कोउ गिनत है अर्थ में कोउ उभय में गाय।।
सोइ लखी सब ग्रंथ में मनन करी मन मांय।
उचित उभय में जानिकैं उभय मांहि हम गाय[४]।।

१- वक्रोक्ति विनोद, ह०प्र०सं० १५५, पृ०१५, छं० ५० ।
श्लेष चंद्रिका, ह०प्र०सं० १५५, पृ०६०, छं०२० ।
२- हिन्दी साहित्य कोश, पृ०६६५ ।
३- वक्रोक्ति विनोद, ह०प्र०सं० १५५, पृ०१५, छं०५० ।
४- श्लेष चंद्रिका, ह०प्र०सं० १५५, पृ०६०, छं०१९-२० ।

स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने विवेकपूर्वक उक्त दोनों अलंकारों को सामान्य परंपरा के अनुसार शब्दालंकार न कह कर उभयालंकार माना है। उन्होंने इन दोनों अलंकारों की चर्चा स्वतंत्र ग्रंथों के रूप में की है, अत: स्वाभाविक है कि उन्होंने इन अलंकारों का बड़े मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया होगा, जिसके कारण इन अलंकारों की चर्चा बड़ी विशद् और सुस्पष्ट रूप में मिलती है।

गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व की यह एक महती विशेषता है कि उन्होंने सर्वत्र अपने विषय को सुस्पष्टता से समझा है और उसी के अनुरूप उसकी बड़ी सविस्तर, सुगम एवं सुस्पष्ट विवेचना कर उसे हृदयंगम कराने की सफल चेष्टा की है। श्लेष चंद्रिका, वक्रोक्ति विनोद आदि रचनाएं इस बात की प्रमाण कही जा सकती हैं। रत्नावली रहस्य और अन्योक्ति अरविन्द में रत्नावली और अन्योक्ति का विवेचन इतने विस्तार से नहीं मिलता, जितने विस्तार से श्लेषचंद्रिका और वक्रोक्ति विनोद में श्लेष और वक्रोक्ति का विवेचन मिलता है। परन्तु उनके विवेचन में भी कहीं किसी प्रकार की अस्पष्टता नहीं मिलती, जो इस बात का प्रमाण है कि गोविन्द गिल्ला भाई का अलंकारशास्त्र पर पूर्ण अधिकार था।

वक्रोक्ति अलंकार के लक्षण और भेदोपभेदों के विषय में यद्यपि गोविन्द गिल्ला भाई ने मूलत: हिन्दी के रीति आचार्यों की परंपरा का ही अनुगमन किया है तथापि यत्र-तत्र कुछ स्थानों पर कुछ मौलिकता भी प्रदर्शित की है। वक्रोक्ति के विषय में हिन्दी रीति आचार्यों का सामान्य भाव यही है कि श्लेष या काकु से जहां अन्य अर्थ की कल्पना की जाय वहां वक्रोक्ति अलंकार माना जाना चाहिए[१]। गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा दी गयी वक्रोक्ति की परिभाषा भी इसी सामान्य भाव का वहन करती है। उन्होंने लिखा है कि-

कथित शब्द के वरन ते अर्थ निकारे और।
वदत वक्रोक्ति वाहि कों गोविंद कवि सिरमौर[२]।

१- अलंकार पीयूष, उत्तरार्ध, ~~मूक~~ डा०रामशंकर शुक्ल 'रसाल', पृ०६६।

२- वक्रोक्ति विनोद, ह०प्र०सं० १५५, पृ०१६, छं०५६।

परंतु वक्रोक्ति का वर्गीकरण रीतिकालीन आचार्यों के अनुसार न होकर बहुत कुछ स्वतंत्र है। रीतिकालीन आचार्यों में से कुछ ने इसे शब्दालंकार मान कर मम्मट के "श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा"[१] के अनुसार वक्रोक्ति के श्लेष और काकु-वक्रोक्ति नाम के दो भेद मान लिये हैं, या अर्थालंकार मान कर इसकी चलती सी व्याख्या कर दी है। परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने वक्रोक्ति के सर्व प्रथम शब्दमूल और अर्थमूल नाम के भेदों/हिन्दी में वक्रोक्ति को शब्दालंकार और अर्थालंकार मानने की दोनों परंपराओं का समन्वय किया है। आगे इसके और भी अनेक भेदोपभेद किये हैं; जिससे गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व में समन्वय और भेद विस्तार की प्रवृत्ति का परिचय मिल जाता है। उनके अनुसार वक्रोक्ति का वर्गीकरण इस प्रकार है[२] -

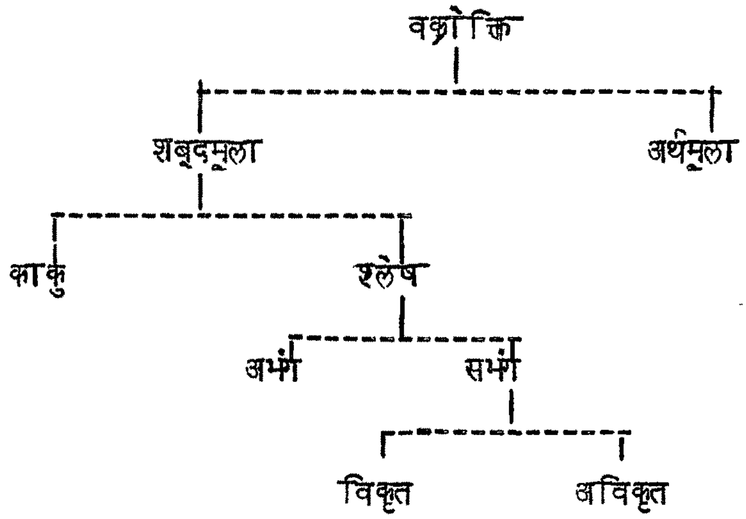

भेद विस्तार की उक्त प्रवृत्ति का विशेष दर्शन श्लेष चंद्रिका में भी होता है। रीतिकालीन आचार्यों के श्लेष के लक्षणों से बहुत कुछ मिलती जुलती श्लेष की परिभाषा देकर गोविन्द गिल्ला भाई ने श्लेष के दो भेद अभंग सभंग नाम से किये हैं,[३] जो प्राय: हिन्दी में प्रचलित श्लेष के सामान्य भेदों के समान कहे

१- काव्य प्रकाश : मम्मट, ६।७८

२- वक्रोक्ति विनोद, ह०प्र०सं० १५५, पृ०५६, ५७।

३- श्लेष चंद्रिका, ह०प्र०सं० १५५, पृ०६०, छं०२२।

जा सकते हैं।[१] परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने पुन: श्लेष का वर्गीकरण कुवलयानन्द के अनुसार वर्ण्य, अवर्ण्य और वर्ण्यावर्ण्य के रूप में किया है जिसे अभंग सभंग भेद पर घटित भी किया है[२]। इसके पश्चात् रुद्रट के अनुसार श्लेष के निम्नलिखित भेद किये गये हैं[३] - वर्ण श्लेष, पद श्लेष, लिंग श्लेष, भाषा श्लेष, प्रकृति श्लेष, प्रत्यय श्लेष, विभक्ति श्लेष, वचन श्लेष। आगे काव्यादर्श के अनुसार श्लेष का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया गया है, अभिन्न क्रिया, अविरुद्ध क्रिया, विरुद्ध क्रिया, नियमवान, नियम, अविरोधी, विरोधी, श्लेष[४]। अंत में गोविन्द गिल्ला भाई ने अविकृत और विकृत नाम से श्लेष के दो भेद किये हैं, जिसमें से अविकृत के अन्तर्गत पूर्व चर्चित श्लेष के भेदों को समाविष्ट किया है तथा विकृत को पुन: विन्दु च्युत, मात्रा च्युत, व्यंजन च्युत, अक्षर च्युत, तथा च्युत दत्ताक्षर नाम से वर्गीकृत किया है[५]।

श्लेषालंकार के भेदों के उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई के समान हिन्दी के किसी आचार्य के श्लेष का वर्गीकरण इतने विस्तार के साथ नहीं किया है। संस्कृत के आचार्यों के अनुसार ही श्लेष के विभिन्न प्रकार से भेद गोविन्द गिल्ला भाई ने किये हैं, परन्तु वे अच्छी तरह जानते थे कि संस्कृत के आचार्यों द्वारा किया गया श्लेष का वर्गीकरण संस्कृत भाषा और काव्य के अनुसार ही है, वह हिन्दी भाषा और काव्य पर यथावत् लागू नहीं हो सकता। इसीलिए उन्होंने काव्यालंकार के अनुसार श्लेष का वर्गीकरण कर भाषा श्लेष के विषय में लिखा है कि-

दो भाषा इक छंद में रचत असंडित कोय।
अर्थ अखंडित उभय को उभय भांति पुनि होय।।

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ०७७७।

२- श्लेष चंद्रिका, ह०प्र०सं० १५५, पृ०६२, छं० २८-३०।

३- वही, पृ०१४० छं०११७।

४- वही, पृ०१४६, छं० १४१-१४२।

५- वही, पृ०१५८, छं०१६०-१६२।

ऐसा होना कठिन है ब्रजभाषा के मांहि ।
ताते ताकों छोड़ि कें औरें कहत सराहि[1] ।।

इसी प्रकार काव्यादर्श के अनुसार श्लेष के भेदों की चर्चा करते समय कवि ने अपनी स्वतंत्र सूफ-बूफ का परिचय दिया है तथा नियम्वान, नियम और विरोधी नामक श्लेष के भेदों को श्लेष नहीं माना[2] । आशय यह कि यद्यपि गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने पूर्ववर्ती संस्कृत एवं हिन्दी के आचार्यों का अनुसरण किया है परंतु अन्धानुकरण नहीं किया है, तथा अपने विचारों को स्वतंत्रतापूर्वक स्पष्टता से सकारण व्यक्त किया है । उदाहरणार्थ लुप्तोपमा के प्रस्ताराधारित भेदों के विषय में कवि का विवेचन देखा जा सकता है । लुप्तोपमा को प्रस्तार के अनुसार १६ भेदों में वर्गीकृत किया जा सकता है परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने प्रस्तार के अनुसार उसके १६ भेद करके उनमें से आठ को ही स्वीकृत किया है, तथा उसके लिए कारण भी प्रस्तुत किये हैं, जो गद्य में हैं। यहां उसमें से कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है-

"उपमालंकार के प्रस्तार करने से सोरह भेद होते हैं । तामें उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म यह चारों जामें होय वह प्रथम प्रस्तार पूर्णोपमालंकार का है, वह काटने से पंदरह रहता है । तामें से सोरहवां प्रस्तार में उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म यह चारों लुप्त एक साथ नहीं होते, तातें वह भी काटने से बचि चौदह रहता है । उनमें से बारहवा प्रस्तार रूपकातिशयोक्ति का होता है, वह नीकालने से तेरह भेद रहता है । इत्यादिक और भी कितनेक मुश्केल और अपवाद होने से काव्य के आचार्यों ने लुप्तोपमा के अष्टभेद उचित मान बहुत ठौर लिखे हैं, ताते हमने भी अष्टभेद नीचे लिखे हैं ।[3]"

यद्यपि हिन्दी में पद्माकर ने लुप्तोपमा के १५ भेद माने हैं और उनके उदाहरण भी दिये हैं[4] परन्तु इन भेदों में कई केवल विस्तार करने की प्रवृत्ति के द्योतक हैं,

---

१- श्लेष चंद्रिका, ह०प्र०सं० १५५, पृ०१४४, छं०१२७-१२८ ।

२- वही, पृ०१५७ ।

३- अलंकार अंबुधि, ह०प्र०सं०१६५, पृ०१०-११ ।

४- तुलनीय है : पद्माभरण, छं०१०-१५ ।

क्योंकि उनका समुचित निर्वाह भी नहीं हो सकता[१]। गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार निरूपण में विस्तार करने की प्रवृत्ति मिलती अवश्य है, परंतु वह औचित्य की सीमा में ही है, क्योंकि भेद विस्तार आदि में सदैव कवि ने कोई न कोई आधार, चाहे वह परंपरा का हो या तर्क का, अवश्य लिया है।

गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार निरूपण के उक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपने समूचे अलंकार निरूपण में किसी एक आचार्य विशेष का अनुसरण नहीं किया है और न ही केवल हिन्दी या संस्कृत के ही आचार्यों का अनुगमन किया है। उन्होंने स्वतंत्र रूप से हिन्दी और संस्कृत के अलंकार शास्त्रों का अध्ययन किया था तथा उसमें से उन्हें जो अधिक रुचा या तर्क संगत प्रतीत हुआ वह उन्होंने स्वीकृत किया। इस प्रकार उनका अलंकार-निरूपण परंपरानुसारी होते हुए भी उनकी स्वतंत्र विवेचन बुद्धि का परिचायक कहा जा सकता है। उपमालंकार का लक्षण ही यहां प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। हिन्दी के आचार्यों में मतिराम, भूषण आदि के उपमा लक्षणों पर चंद्रालोक और कुवलयानन्द की छाया स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती है,[२] परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा दी गयी उपमालंकार की परिभाषा पर उनका प्रभाव नहीं माना जा सकता। उन्होंने उपमा का लक्षण इस प्रकार दिया है-

वरनत सादृस्य वस्तु की समता काहू साथ।
गोविंद उपमा ताहि कों कहत कविन के नाथ[३]।।

जो भरत मुनि द्वारा दी गयी निम्नलिखित परिभाषा के अधिक निकट है-

यत्किंचित्काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपमीयते।
उपमा नाम विज्ञेया गुणाकृति समाश्रया[४]।।

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ०१५६।

२- वही, पृ०१५५।

३- अलंकार अंबुधि, ह०प्र०सं० १६५, पृ०५, छं०२७।

४- नाट्यशास्त्र, १७।४४

केशवदास ने उपमा की जो परिभाषा दी है-

रूप शील गुन होंहि सम जौं क्यों हू अनुसार[१]।

उसमें थोड़ा परिवर्तन कर गोविन्द गिल्ला भाई ने उसे उपमा के भेद का एक आधार मान लिया है, तथा अपनी मौलिक चिंतन-शक्ति का स्पष्ट परिचय दिया है। उन्होंने कहा है कि-

रूप वर्ण अरु शील तें उपमा होत उचित्त।
तातें ताके भेद त्रय बरनत विबुध अमित्त[२]।।

इतना ही नहीं वरन् आगे गोविन्द गिल्ला भाई ने रूप, वर्ण और शील शब्दों की स्पष्ट व्याख्या की है, तथा रूपोपमा आदि के उदाहरण देकर उनके मिश्रित उदाहरण भी दिये हैं, और अंत में कहा है कि-

रूप वर्ण अरु शील त्रय संयुत चार मिलात।
उपमा सात प्रकार की गोविंद कवि सब गाय[३]।।

आगे गोविन्द गिल्ला भाई ने परंपरा प्राप्त उपमा के पूर्णोपमा आदि भेद किये हैं, परंतु इससे पूर्व ही उन्होंने उपमा के चारों अंगों की सुस्पष्ट व्याख्या तथा उनके विभिन्न नाम आदि देकर[४] अपने विवेचन की पूर्णता तथा स्पष्टता का परिचय दिया है और विषय पर अपने पूर्ण अधिकार को भी सिद्ध कर दिया है। पद्माकर की पूर्णोपमा की निम्नलिखित परिभाषा को विद्वानों ने मतिराम आदि की परिभाषाओं से स्पष्टतर मानी है[५]-

---

१- कविप्रिया : केशवदास, १४।१

२- अलंकार अंबुधि, ह०प्र०सं० १६५, पृ०५, छं०२८।

३- वही, पृ०७,छं०४०।

४- वही, पृ०७-८, छं०४१-५२।

५- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ०१५५।

उपमारु वाचक धरय उपमेय हु जो कोइ ।
ये चार हु परसिद्ध जहाँ पूरन उपमा सोइ ।[1]

परन्तु इस दोहे में उपमा के चारो अंगों का जिस क्रम में उल्लेख किया गया है तथा प्रथम पंक्ति में `कोई ` जैसे अनिश्चयवाचक शब्द के प्रयोग के कारण, पद्माकर की पूर्णोपमा की परिभाषा को गोविन्द गिल्ला भाई की निम्नलिखित परिभाषा की तुलना में स्पष्ट ही कहा जा सकता है स्पष्टतर नहीं । गोविन्द गिल्ला भाई ने लिखा है कि :

उपमेय रु उपमान पुनि वाचक धरम सु होय ।
यह चारो जहाँ मिलत हैं पूरन उपमा सोय ।[2]

यह स्पष्ट है कि पद्माकर की परिभाषा में कोई शब्द के स्थान पर गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा `सु होय `का प्रयोग तथा `परसिद्ध `के स्थान पर `जहाँ मिलत `का प्रयोग कथन को अधिक स्पष्ट और सुनिश्चित कर रहा है ।

जिस विस्तार के साथ गोविन्द गिल्ला भाई ने वक्रोक्ति और श्लेष का विवेचन स्वतंत्र ग्रंथों के रूप में किया है उसी विस्तार के साथ अनुप्रास और यमक का विवेचन कवि ने गोविन्द हजारा और शब्द विभूषण नामक ग्रंथों में किया है, जिनमें अन्य अलंकारों का विवेचन भी किया गया है । शब्द विभूषण ३८ पृष्ठों के प्रथम प्रकाश में तथा गोविन्द हजारा के ४२ पृष्ठों के द्वितीय प्रकरण में केवल अनुप्रास अलंकार का विवेचन किया गया है, गोविन्द हजारा अलंकार ग्रंथ होते हुए संग्रह ग्रंथ भी है, अत: उसमें अनुप्रास अलंकार के विवेचन की अपेक्षा स्वरचित, एवं हिन्दी के अन्य कवियों द्वारा रचित अनुप्रास के छंदों का संग्रह अधिक है । इसीलिए उसमें श्रुत्यानुप्रास और अंत्यानुप्रास[3] का विवेचन यह कह कर नहीं किया कि उसमें चमत्कार अधिक नहीं होता । परन्तु शब्द विभूषण

१- पद्माभारण - पद्माकर, छं० ८ ।

२- अलंकार अंबुधि ह०प्र०सं०१६५, पृ०६ छं० सं० नहीं लिखी है ।

३- गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३, पृ० ३३ ।

में उन्होंने अनुप्रास के इन भेदों का भी विवेचन किया है । अनुप्रास अलंकार का विवेचन गोविन्द गिल्ला भाई ने ऐसे विस्तार के साथ किया है तथा उसमें ऐसी व्यवस्था का परिचय दिया है कि उसे रीतिकालीन हिन्दी के आचार्यों के अलंकार-साहित्य में विशिष्ट प्रकार का कहा जा सकता है । निम्नलिखित विवरण के आधार पर अनुप्रास के भेदोपभेद विस्तार को स्पष्ट किया जा सकता है :

अनुप्रास

- छेकानुप्रास
- वृत्यानुप्रास
- लाटानुप्रास
- वीप्सानुप्रास
- श्रुत्यानुप्रास
- अन्त्यानु०
- स्फुटानु०

छेकानुप्रास

- आदि आवृत्ति
- अंत आवृत्ति
  - स्वर की समता
  - स्वर की विषमता

वृत्यानुप्रास

- आदि वर्ण आवृत्ति
  - १- आदि एक वर्ण की अनेक आवृत्ति
  - २- आदि दो वर्ण की अनेक आवृत्ति
  - ३- आदि चार वर्ण की अनेक आवृत्ति
  - ४- आदि आठ वर्ण की अनेक आवृत्ति
- अंत वर्ण आवृत्ति
  - १- अंत एक वर्ण की अनेक आवृत्ति
  - २- अंत अनेक वर्ण की अनेक आवृत्ति

- लाटानुप्रास
  - पदावृत्ति
    - एकपदावृत्ति
    - बहुपदावृत्ति
  - नामावृत्ति
    - समासावृत्ति
    - भिन्न समासावृत्ति
    - असमास में समासावृत्ति

- वीप्सानुप्रास
  - चरणादि वीप्सा
  - चरणांत वीप्सा

- अंत्यानुप्रास
  - समान्त
    - पादांत
    - पदांत
  - विषमांत
  - सम विषमांत

अनुप्रास अलंकार के विवेचन के प्रसंग में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि संस्कृत के विभिन्न आचार्यों ने वृत्तियों और रीतियों का विवेचन विभिन्न प्रकार से किया है परन्तु हिन्दी के अनेक रीतिकालीन आचार्यों ने वृत्तियों का विवेचन वृत्यानुप्रास के अंतर्गत ही किया है।[१] उदाहरणार्थ चिन्तामणि ने 'कवि-कुल - कल्पतरु' में मम्मट के अनुसार वृत्तियों का वर्णन वृत्यानुप्रास के अंतर्गत किया है और वृत्तियों को ही वैदर्भी आदि रीति माना है। गोविन्द गिल्ला भाई ने भी चिन्तामणि के समान वृत्यानुप्रास के अंतर्गत उपनागरिका

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७३५ आदि।

परुषा और कोमला वृत्ति का विवेचन किया है और उन्हें क्रमशः वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली नाम से अभिहित किया है,[१] जिससे स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई संस्कृत आचार्यों की अपेक्षा हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों के अधिक निकट हैं।

जिस प्रकार केशवदास ने कविप्रिया के १५ वें प्रभाव में केवल यमक अलंकार का विवेचन किया है,[२] उसी प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई ने गोविन्द हजारा के तृतीय प्रकाश में यमक का सविस्तार विवेचन किया है। यमक के विवेचन में उन्होंने यद्यपि केशव का पूर्णतः अनुगमन नहीं किया है परन्तु केशव द्वारा स्वीकृत यमक के सव्यपेत अव्यपेत भेद उन्होंने स्वीकृत किये हैं, पर केशव द्वारा मान्य स्वयपेत के १० और अव्यपेत के १२ उपभेद स्वीकृत नहीं किये हैं।[३] भिखारीदास के समान गोविन्द गिल्ला भाई ने सिंहावलोकन को यमक का ही एक भेद माना है।[४] यमक अलंकार के जो उदाहरण गोविन्द गिल्ला भाई ने दिये हैं तथा जिन पर आदि पद, पादान्त, त्रिपादादि, चष्पादादि, यमक आदि का नामोल्लेख किया है,[५] उन पर केशव द्वारा मान्य यमक के उक्त उपभेदों का प्रभाव देखा जा सकता है। वस्तुस्थिति जो भी हो, परन्तु इतना निश्चित है कि गोविन्द गिल्ला भाई हिन्दी के सभी प्रमुख रीति आचार्यों से परिचित थे और उन्होंने उनके अलंकार आदि विवेचन का अपने अलंकार-विवेचन में पूर्ण उपयोग किया है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने श्लेष और वक्रोक्ति पर स्वतंत्र ग्रंथ लिखकर तथा अनुप्रास एवं यमक पर गोविन्द हजारा और शब्द विभूषण में स्वतंत्र अध्याय लगा कर इन अलंकारों का विशेष रूप से सविस्तार विवेचन किया है। चंद्रालोक कुवलयानन्द की संक्षिप्त शैली के अनुकरण के कारण

१- देखिए : गोविन्द हजारा, पृ० ४० से ४५।

२- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६०७।

३- तुलनीय है : अलंकार पीयूष - पूर्वार्ध - डा० रामशंकर शुक्ल, रसाल, पृ० २२७।

३- तथा शब्द विभूषण, पृ० ३६, गोविन्द हजारा पृ० ७४।

४- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६०८ और गोविन्द हजारा पृ० ६४ से ६६।

५- तुलनीय है : अलंकार पीयूष, पूर्वार्ध, पृ० २२७ डा० रामशंकर शुक्ल रसाल और शब्द विभूषण पृ० ३६ से ५४।

रीतिकालीन आचार्यों का अलंकार-निरूपण उतने विस्तार के साथ नहीं मिलता, जितने विस्तार के साथ गोविन्द गिल्ला भाई के ग्रंथों में है। रत्नावली और अन्योक्ति पर भी उन्होंने स्वतंत्र ग्रंथ लिखे हैं, परन्तु उनमें भी इतना विस्तार नहीं है जितना श्लेष चंद्रिका आदि में है। रत्नावली रहस्य की प्रति तो अपूर्ण ही है, अत: उसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, हां, उसमें रत्नावली अलंकार का जो लक्षण दिया गया है उसमें कुछ भी मौलिकता नहीं है, परम्परानुसारी लक्षण ही है।[1]

अन्योक्ति अलंकार का विवेचन गोविन्द गिल्ला भाई ने दो स्थानों पर किया है, एक तो शब्द विभूषण में जहां इसे एक स्वतंत्र अलंकार माना गया है,[2] और दूसरे अन्योक्ति अरविन्द नामक ग्रंथ में जहां इसे अप्रस्तुत प्रशंसा का सारूप्य निबन्धना नामक भेद माना गया है[3]। संस्कृत के आचार्यों में से सर्वप्रथम रुद्रट ने इसे स्वतंत्र अलंकार के रूप में स्वीकृत किया है, परन्तु परवर्ती आचार्यों ने इसे स्वतंत्र अलंकार नहीं माना[4]। कुछ आचार्यों ने इसका वर्गीकरण भी किया है[5]। गोविन्द गिल्ला भाई ने अन्योक्ति अरविन्द में इसे अप्रस्तुत प्रशंसा का एक भेद मानते हुए इसका वर्गीकरण भी किया है, परन्तु यह वर्गीकरण अन्योक्ति अलंकार को दृष्टि में रख कर नहीं किया गया वरन् अन्योक्तियों के विषयों को दृष्टि में रख कर किया गया है[6]। सर्वप्रथम अन्योक्ति के दो भेद किये हैं : १- स्थावर, जंगम। जंगम को पुन: खेचर, भूचर और जलचर के रूप में बांटा है[7]। इस प्रकार का अन्योक्ति का वर्गीकरण शार्गंधर पद्धति ग्रंथ में मिलता है,[8] हिन्दी या संस्कृत के किसी अलंकार ग्रंथ में इस प्रकार का वर्गीकरण देखने में नहीं आया।

१- तुलनीय है : रत्नावली रहस्य ह०प्र०सं० १५५, पृ०१८५।

२- शब्दविभूषण ह० प्र०सं०१७३ पृ० ६१ छं० ४६।

३- अन्योक्ति अरविन्द ह०प्र०सं० १५४ पृ० ४३ छं० २०।

४- हिन्दी काव्य में अन्योक्ति, पृ०१२- डा० संसार चंद्र।

५- वही पृ०३४।

६- अन्योक्ति अरविन्द ह०प्र०सं० १५४ पृ०४४ छं० २१, २२। ७- वही।

८- शार्गंधर पद्धति पृ० ११४ सं० पीटर पीयरशन।

शब्द विभूषण और गोविन्द हजारा में अपह्नुति, व्यतिरेक, व्याघात, कारनमाला, एकावली, मुक्त प्रवेशी, सार, मुद्रा आदि अलंकारों का विवेचन गोविन्द गिल्ला भाई ने किया है/ परन्तु इन अलंकारों का विवेचन हिन्दी के रीति आचार्यों के अलंकार-विवेचन के समान ही है, जिसमें पहले दोहा आदि किसी छंद में अलंकार का लक्षण दिया गया है और बाद में उसका एकाध उदाहरण । अत: इन अलंकारों के विषय में कुछ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय नहीं है ।

शब्द विभूषण के अंतिम प्रकाश में गोविन्द गिल्ला भाई ने प्रश्नोत्तर, शासनोत्तर, एकानेकोत्तर, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, पहेलिका तथा चित्र काव्य का वर्णन किया है । भिखारीदास ने अपने काव्य निर्णय के इक्कीसवें उल्लास में पहेलिका को छोड़ कर/सभी का विवेचन चित्र अलंकार के अंतर्गत किया है[१]। गोविन्द गिल्ला भाई ने भिखारीदास के समान न तो इनको चित्रकाव्य ही कहा है और न इस प्रकार का कोई वर्गीकरण किया है । हां, उनके विवेचन से इतना स्पष्ट अवश्य हो जाता है कि वे इन सबको पहेलिका के समान ही एक अलंकार मानते हैं । पहेलिका को हिन्दी के आचार्यों ने अलंकार ही नहीं माना/ संस्कृत के भी सभी प्रमुख आचार्यों ने इसे कोई स्थान नहीं दिया है[२]। केशवदास ने अपनी कविप्रिया में पहेलिका की चर्चा अवश्य की है[३]। गोविन्द गिल्ला भाई ने पहेलिका का विस्तार से विवेचन किया है और उसके निम्नलिखित चार भेद भी किये हैं : १- दृष्टिकूट पहेली, २- शास्त्रोक्त पहेली, ३- नाम सहित पहेली, ४ वर्ण पहेली[४]

गोविन्द गिल्ला भाई ने चित्र-काव्य का विवेचन स्वतंत्र रूप से शब्द विभूषण में किया है, परन्तु वह स्पष्ट नहीं है, क्योंकि एक स्थान पर उसके शब्द चित्र अर्थ चित्र और उभय चित्र नाम से भेद किये हैं, परन्तु उनको स्पष्ट

१- तुलनीय है : हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० ७०६ ।

२- अलंकार पीयूष, उत्तरार्ध - डा० रामशंकर शुक्ल `रसाल `, पृ० ३८५ ।

३- वही-

४- शब्द विभूषण ह०प्र०सं०१७२, पृ० ११५ ।

किये बिना ही पुन: उसके स्वर, स्थल, बंध, अकार, गुन जाति नाम से षट्-भेद कर दिये हैं,[1] परन्तु इनमें से न किसी के लक्षण दिये हैं न उदाहरण, केवल समुद्र बंध चित्र का एक उदाहरण दे ग्रंथ पूरा कर दिया है। परिणाम स्वरूप चित्र-काव्य का सारा प्रकरण अस्पष्ट और अपूर्ण रह गया है। शब्द विभूषण के चतुर्थ प्रकाश के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने इस प्रकाश के प्रणयन में केशव, चिन्तामणि, काशिराज तथा भिखारीदास के ग्रंथों का पूर्ण उपयोग किया है। परन्तु पहेलिका एवं चित्र काव्य के विषय को अन्य अलंकारों के समान स्पष्टत: निरूपित नहीं कर सके हैं।

गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार निरूपण के विषय में अंत में यह बात विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि यद्यपि उन्होंने रीतिकालीन परम्परा के अनुसार प्राय: सर्वत्र लक्षणों के लिए दोहा और उदाहरणों के लिए कवित्त सवैया छंदों का ही प्रयोग किया है, परन्तु यत्र तत्र उन्होंने कवित्त आदि अन्य छंदों का प्रयोग लक्षणों के लिए और दोहा आदि छंदों का प्रयोग उदाहरणों के लिए किया है। साथ ही वक्रोक्ति विनोद, श्लेष चंद्रिका, गोविन्द हजारा आदि ग्रंथों में विषय के स्पष्ट प्रतिपादन के लिए गद्य का प्रयोग भी किया है। अपने लक्षणों की व्याख्या, उदाहरणों के कठिन अंश की व्याख्या और लक्षण उदाहरण में तारतम्य की विवेचना के लिए उन्होंने अनेक स्थानों पर गद्य का प्रयोग किया है। अनेक स्थानों पर छंद के कठिन शब्दों का केवल अर्थ ही दे दिया गया है। इस प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने विषय को सुस्पष्ट शैली में प्रतिपादित किया है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने हिन्दी आलंकारिकों द्वारा मान्य सभी अलंकारों का विवेचन नहीं किया है, परन्तु जिन जिन अलंकारों का उन्होंने विवेचन किया है वह न केवल सुस्पष्ट है परन्तु कुछ स्थानों पर कुछ मौलिकता लिये हुए भी है/ संस्कृत के

१- तुलनीय है : शब्दविभूषण ह०प्र०सं० १७३ पृ० ११७ आदि।

अलंकार ग्रंथों का उन्होंने यथोचित उपयोग अवश्य किया है परन्तु मूलत: वे हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों की परम्परा में ही आते हैं, अत: हिन्दी के अलंकार निरूपक आचार्यों की परम्परा में गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार निरूपण को अनेक दृष्टियों से अनेक अलंकार निरूपक आचार्यों के अलंकार निरूपण से श्रेष्ठ कहा जा सकता है तथा हिन्दी के श्रेष्ठ अलंकार निरूपक आचार्यों में उनका विशेष स्थान स्वीकृत किया जा सकता है ।

गोविन्द गिल्ला भाई का नायकादि भेद निरूपण

नायक-नायिका-भेद से संबद्ध शास्त्रीय चर्चा मूलत: संस्कृत में ही मिलती है तथा संस्कृत में भी इसकी चर्चा नाट्य-शास्त्र, काव्य-शास्त्र और काम-शास्त्र में विशेष रूप से मिलती है[१]। मध्यकाल में धार्मिक दृष्टि से चैतन्य संप्रदाय के आचार्यों ने इस विषय की चर्चा की है, परन्तु वह तत्कालीन काव्य-शास्त्रीय नायक नायिका भेद से प्रभावित है । विद्वानों की मान्यता है कि मूलत: नायक नायिका भेद का संबंध नाट्यशास्त्र के रस सिद्धान्त से था[२], अत: भरत के नाट्यशास्त्र में ही इसकी सर्वप्रथम चर्चा मिलती है[३]।तदुपरान्त वात्सायन के कामसूत्र[४] में तथा काव्य-शास्त्रों में रुद्रट के काव्यालंकार[५] में इसकी चर्चा मिलती है । आशय यह कि ऐतिहासिक दृष्टि से नायक नायिका भेद की चर्चा जैसे क्रमश: नाट्य, काम और काव्य-शास्त्र में मिलती है, वैसे ही इस विषय के अंतिम विकसित रूप में उक्त तीनों शास्त्रों का स्वतंत्र रूप से योगदान भी है जो शृंगार रस के एक प्रमुख अंग के रूप में हिन्दी में स्वीकृत हुआ है । तात्पर्य यह कि हिन्दी में नायिकादि भेद की चर्चा के समय उसके ऐतिहासिक विकास क्रम को भुलाया जा चुका था, और

१- हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० ३७१ ।

२- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ३३८ ।

३- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३६३ ।

४- ,, : हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० ३७१ ।

५- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वि०भा०-आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ३३६ ।

वह एक प्रकार से स्वतंत्र विषय के रूप में स्थापित हो चुका था, इसीलिए शृंगार[१] रस के विवेचन के अंतर्गत तो नायिका भेद की चर्चा हिन्दी में मिलती ही है, साथ ही स्वतंत्र रूप से इस विषय पर ग्रंथ लिखे गये हैं। परन्तु ये स्वतंत्र नायकादि भेद ग्रंथ महत्व की दृष्टि से ही स्वतंत्र थे, विषय की दृष्टि से ये रस-शास्त्र के एक अंग के रूप में ही स्वीकृत थे।

मध्यकाल में हिन्दी में नाट्य-शास्त्र और नाट्य-साहित्य के प्राय: अभाव के कारण नायक नायिका भेद को नाटक का प्रत्यक्ष आधार प्राप्त तो नहीं हो सका था[२]; परन्तु काम-शास्त्र के आधार पर अनेक रीतिकालीन आचार्यों ने इस विषय की चर्चा की है।[३] परन्तु संस्कृत के समान ही हिन्दी में इस विषय की चर्चा काव्य-शास्त्र में मुख्यत: रस के अंतर्गत ही हुई है, और वह भी प्राय: शृंगार रस का विवेचन करने वाले ग्रंथों में[४]। कृपाराम की हित तरंगिनी १५४१ ई०[५] से प्रारम्भ होकर, हिन्दी में नायक नायिका भेद की चर्चा काव्य-शास्त्र के एक प्रमुख विषय के रूप में आज तक होती चली आ रही है। हिन्दी के इन ग्रंथों में विवेचित नायक नायिका भेद को प्रथमत: दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है : १- अंग रूप में विवेचित, २- अंगी रूप में विवेचित। इन्हें पुन: निम्नलिखित प्रकार से विभक्त किया जा सकता है :

(१) अंग रूप में :

१- विविध काव्यांग निरूपक ग्रंथों में काव्य के विविध अंगों के निरूपण के प्रसंग में इस विषय की चर्चा गौण रूप से हुई है।

२- संपूर्ण रस-सिद्धान्त की चर्चा के प्रसंग में इस विष की चर्चा अति गौण रूप से हुई है।

३- शृंगार-रस-विवेचन के प्रसंग में इस विषय की चर्चा प्राय: प्रधान रूप में हुई है।

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३६३। २- वही, पृ० ३६३।
३- वही, पृ० ३६४। ४- वही, पृ० ३६४।
५- वही, पृ० ३६४।

(२) अंगी रूप में :

१- केवल नायक नायिका भेद की चर्चा करने वाले ग्रंथों में अंगी रूप में इस विषय की चर्चा हुई है[1]।

हिन्दी में नायक नायिका भेद के आधारभुत ग्रंथ, प्रधानत: विद्वानों ने निम्नलिखित माने हैं :

१- रुद्रट कृत काव्यालंकार ६वीं शताब्दी
२- रुद्रभट्ट कृत शृंगार तिलक ६वीं से ११वीं शताब्दी
३- विश्वनाथ कृत साहित्य दर्पण १४वीं शताब्दी
४- भानु दत्त कृत रस मंजरी १३वीं शताब्दी[2]

आशय यह कि हिन्दी नायका नायिका भेद का आधार संस्कृ-काव्य-शास्त्र ही है, परन्तु उसमें मौलिकता, विस्तार तथा नवीनता पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। वस्तुत: हिन्दी साहित्य के अंतर्गत, शृंगार के महत्व के साथ ही इस विषय का विशद विवेचन किया गया है। अधिकांश ग्रंथों में रस-चर्चा की अपेक्षा नायक नायिकाओं के वर्गीकरण और वर्णन का विस्तार अत्यधिक है[3]।

हिन्दी रीति आचार्यों की परम्परा के अनुसार गोविन्द गिल्ला भाई ने नायक नायिका भेद की चर्चा रस चर्चा के अंतर्गत ही की है, केवल नायक नायिका

१- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास षष्टम् भाग में एक स्थान पर पृ० १३५, नायक - नायिका भेद की दृष्टि से संस्कृत काव्यशास्त्र के ग्रंथों को दो भागों में बांटा गया है तथा हिन्दी के रस निरूपक आचार्यों के ग्रंथों की चर्चा करते हुए उन्हें तीन भागों में बांटा है, यथा : समस्त रस निरूपक, केवल शृंगार रस निरूपक और केवल नायक नायिका भेद निरूपक, पृ०३८६। उक्त दोनों वर्गीकरणों के संमिलित आधार पर प्रस्तुत वर्गीकरण किया गया है।
२- हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग, पृ० ३४०,३४१ - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र। ग्रंथों की तिथियों के लिए देखिए : हिन्दी साहित्य कोश, पृ०३६४।
३- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३६५।

भेद पर स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखा है । परन्तु जिस ग्रंथ में उन्होंने नायक नायिका भेद का विवेचन किया है, उसके अधिकांश में नायक नायिका भेद ही है, तथा अत्यन्त अल्पांश में शृंगार रस के कुछ अंगों की चर्चा की है । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ने नायक नायिका भेद की चर्चा अंगी रूप में तो नहीं की है, परन्तु शृंगार रस विवेचन के प्रसंग में प्रधान रूप से इसकी चर्चा की गयी है ।

गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने 'शृंगार सरोजिनी' नामक ग्रंथ में नायक नायिका भेद की चर्चा की है । इस ग्रंथ का परिचय पहले दिया जा चुका है , परन्तु यहां यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इस ग्रंथ की रचना में कवि का उद्देश्य मूलत: तथा प्रधानत: शृंगार-रस-विवेचन नहीं था, वरन् केवल नायिका-भेद-निरूपण था । इस रचना के अध्ययन से तो यह बात स्वत: ही सिद्ध हो जाती है, क्योंकि रचना के अधिकांश में नायिका भेद निरूपण ही है । साथ ही इस रचना की एक अपूर्ण और कदाचित् पूर्ववर्ती प्रति में एक स्थान पर इस बात का कवि ने उल्लेख भी किया है । कवि ने लिखा है कि :

सो नव रस में जानिये उत्तम रस शृंगार ।
उनमें उत्तम नायिका बरनों सोइ विचार ।[1]

परन्तु दूसरी प्रति जिसे अध्ययन को आधार भूत प्रति माना गया है,[2] उसमें उक्त दोहा नहीं मिलता । इससे यही प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में गोविन्द गिल्ला भाई की इच्छा केवल नायिका भेद निरूपण करने की रही होगी/परन्तु बाद में नायिका भेद को पूर्णता प्रदान करने के लिए उन्होंने उसमें नायक, सखी, दूती, सखा आदि के विवेचन के साथ साथ शृंगार रस का भी आवश्यक विवेचन जोड़ दिया होगा । इस प्रकार यही सिद्ध होता है कि मूलत: शृंगार सरोजिनी नायिका भेद का ही ग्रंथ है, अन्य सभी विषयों का विवेचन ग्रंथ की पूर्णता के

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६६,पृ०सं० नहीं दी है छं०सं० ७ ।

२- देखिए : पंचम अध्याय ।

हेतु होने के कारण, इसे इस ग्रंथ का गौण और नायिका भेद को प्रधान विषय कहा जा सकता है।

जैसा कि अलंकार-निरूपण के प्रसंग में कहा जा चुका है कि गोविन्द गिल्ला भाई का अलंकार-निरूपण किसी एक संस्कृत या हिन्दी के अलंकार ग्रंथ पर आधारित नहीं है, उसी प्रकार उनके नायिका भेद आदि विवेचन के विषय में भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने किस नायिका भेद निरूपक ग्रंथ को अपने विवेचन के आधार के रूप में स्वीकृत किया है। विद्वानों की धारणा है कि शृंगार रस विवेचन में हिन्दी के आचार्यों ने मुख्यत: रुद्रट, रुद्रभट्ट और भानुमिश्र का ही अनुगमन किया है,[१] परन्तु लक्ष्य पक्ष में उन्होंने भानुमिश्र आदि संस्कृत के आचार्यों का अनुगमन न कर रूप गोस्वामी का अनुगमन किया है[२]। गोविन्द गिल्ला भाई के नायक नायिका भेद निरूपण में इन आचार्यों का प्रभाव अवश्य है, परन्तु जैसा कि आगे अध्ययन से स्पष्ट होगा, उन पर यह प्रभाव प्रत्यक्ष रूप और प्रधान रूप से नहीं माना जा सकता, क्योंकि अलंकार निरूपण के समान ही उन्होंने नायक नायिका भेद निरूपण में भी हिन्दी के आचार्यों की परम्परा का ही अनुसरण प्रधान रूप से किया है।

गोविन्द गिल्ला भाई के नायक नायिकादि निरूपण को प्राधान्य क्रम के अनुसार निम्नलिखित तीन शीर्षकों में विभक्त कर उनका अध्ययन किया जा सकता है :

(१) नायिका भेद निरूपण
(२) नायक भेद निरूपण
(३) सखी सखा आदि निरूपण।

१- हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ३४०।

२- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्टम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १३६।

गोविन्द गिल्ला भाई का नायिका भेद निरूपण

नायिका शब्द का मूल पारिभाषिक अर्थ नाट्य शास्त्र में नाटक की प्रधान पात्री और काव्य-शास्त्र में शृंगार रस की आलंबन ही माना जा सकता है।[1] परन्तु इस शब्द का सामान्य अर्थ नायक की पत्नी या प्रिया भी हो सकता है।[2] वैसे काम शास्त्र के अनुसार तथा लोक-प्रयोग के अनुसार यह शब्द और भी अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है, परन्तु रीतिकालीन आचार्यों के नायिका भेद निरूपण के अध्ययन में यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

नायिका भेद निरूपण के प्रसंग में रीतिकालीन आचार्यों ने नायिका अध्ययन निम्नलिखित दो रूपों में किया है :

१- नायिका स्वरूप वर्णन
२- नायिका भेद वर्णन

गोविन्द गिल्ला भाई रीति परम्परा के अनुसार नायिका भेद से पूर्व नायिका के स्वरूप का वर्णन करते हैं। गोविन्द गिल्ला भाई ने नायिका को नव रसों में उत्तम शृंगार रस का आलंबन माना है जो "कवियन कों सुखदायका और रसिकन कों रिझवार "के रूप में वर्णित की गयी है।[3] आगे रीति परम्परा में वर्णित नायिका की प्राय: सभी प्रमुख विशेषताओं को संग्रहीत कर नायिका का व्यापक विवरणात्मक लक्षण इस प्रकार दिया है :

सुन्दर सरूपवान ओपत अमित महा,
सुघर चतुर सदा विमल विभायका।
जानत सकल कला आप अभिराम अरु,
उर में उदार महा प्रेम सरसायका।

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०१।
२- वही।
३- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१ पृ० १ छं० ८, ६।

गोविन्द सुहाग भरी भावभरी भ्राजत है,
लाजभरी भाग्यभरी नेह की बिभायका ।
मैन उपजायका औ दायका दयित सुख,
ऐसे गुन लायका कों कीजे कवि नायिका ।[१]

स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा दिया गया नायिका का उक्त लक्षण चिन्तामणि,[२] सोमनाथ,[३] भिखारीदास[४] आदि द्वारा दिये गये लक्षणों से अधिक व्यापक एवं विवरणपूर्ण है, परन्तु जैसे जैसे व्यापकता लक्षण में आती गयी है वैसे वैसे उसमें अतिव्यापि दोष भी आता गया है । क्योंकि आगे नायिकाओं के जो भेद किये गये हैं उन सब पर यह लक्षण चरितार्थ नहीं हो सकता । प्रस्तुत लक्षण से पूर्व गोविन्द गिल्ला भाई ने नायिका का एक लक्षण और दिया है वह रीति परम्परा के आचार्यों ने लक्षणों के अधिक निकट है, साथ ही अधिक संयमित और शुद्ध भी । उन्होंने लिखा है कि :

शील रूप गुन चातुरी जेहि जोय में देखि ।
नर उर उपजतचाह अति सोइ नायका लेखि ।[५]

स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा दिया गया नायिका का लक्षण मतिराम के निम्नलिखित दोहे के अधिक निकट है, परन्तु कवि ने अपने दोहे में रूप गुन, शील और चातुरी का उल्लेख कर अपनी मान्यता अधिक स्पष्ट कर दी है । मतिराम का दोहा है :

उपजत जाहि विलोकि कैं चित्त बीच रस भाव ।
ताहि बखानत नायिका जे प्रवीन कविराव ।[६]

१- वही, पृ०२ छं० ११ ।
२- कविकुलकल्पतरु ५।१।६६ - चिन्तामणि ।
३- रसपीयूषनिधि - सोमनाथ ८।१० ।
४- रससारांश - भिखारीदास १५५ ।
५- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१ पृ०२ छं० १० ।
६- रसराज - मतिराम ५ ।

शृंगार सरोजिनी की दूसरी प्रति में नायिका के लक्षण के दोहे पर मतिराम का प्रभाव और भी अधिक स्पष्ट है, वह दोहा है :

निरखत जेहि नारिकों नर उर उपजत भाव ।
गोविंद ताकों नायिका कहत सबै कविराव ।[१]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने जिस प्रकार से नायिका के स्वरूप का वर्णन किया है, वह रीतिकालीन आचार्यों द्वारा दिये गये नायिका के लक्षणों पर ही आधारित है। रीतिकालीन आचार्यों के समान ही गोविन्द गिल्ला भाई ने नायिका के स्वरूप निरूपण में अधिक विस्तार का परिचय नहीं दिया है, तथा उन्हीं के अनुसार नायिका का एक सामान्य लक्षण दे उसके भेदोपभेदों का निरूपण प्रारम्भ कर दिया है ।

काव्यशास्त्र के प्राय: सभी प्रमुख आचार्यों ने नायिकाओं की सामान्यत: तीन प्रकार का माना है - १-स्वकीया, २- परकीया, ३- सामान्या ।[२] संस्कृत में भरत, अग्निपुराणकार, वाग्भट के शव मिश्र तथा रामचंद्र गुणचंद्र ने नायिकाओं का वर्गीकरण कुछ भिन्न रूप से किया है[३] तथा रूप गोस्वामी ने केवल स्वकीया और परकीया को माना है[४]। परन्तु हिन्दी के सभी आचार्यों ने स्वकीया, परकीया और सामान्यता को नायिका के सामान्य भेदों के रूप में स्वीकृत किया है।[५] वस्तुत:[६] नायिका के उक्त भेद सामाजिक व्यवहार पर ही आधारित माने जा सकते हैं, क्योंकि परकीया और सामान्या के प्रति रति के अनुचित होने के कारण उन्हें शृंगार रस के आलंबन के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता ।[७]

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६६ पृ०१ क्रं० ५ ।

२- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य को, पृ० ४०१, ४०२ ।

३- ,, : वही, पृ० ४०२ ।

४- ,, : वही, पृ० ४०२ ।

५- ,, : वही, पृ० ४०२ ।

६- ,, : हिन्दी रीति परंपरा के प्रमुख आचार्य -डा० सत्यदेव चौधरी, पृ०४०४।

७- ,, : काव्यप्रकाश ५। ११६, वृत्ति भाग, साहित्य दर्पण ३। २६२, २६३ ।

परन्तु हिन्दी के सभी आचार्यों ने नायिका को सर्वप्रथम इसी प्रकार बांटा है। गोविन्द गिल्ला भाई ने भी इस परम्परा के अनुसार नायिका के सर्वप्रथम तीन ही भेद किये हैं : १- स्वकीया, २- परकीया, ३- गनिका[१]। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा दी गयी नायिका की सामान्य परिभाषा नायिका के उक्त तीनों भेदों और उनके उपभेदों पर सामान्य रूप से चरितार्थ नहीं होती। हिन्दी के अन्य आचार्यों द्वारा दिये लक्षणों के विषय में भी यह बात सत्य है। उनके लक्षणों में वह कसावट नहीं मिलती, जो संस्कृत के आचार्यों के लक्षणों में मिलती है। इसीलिए इनके लक्षणों का लचरपन सर्वविदित है[२]।

गोविन्द गिल्ला भाई ने स्वकीया नायिका का जो लक्षण दिया है उसमें उन्होंने स्वकीया का सजातीया, विधिपूर्वक विवाहिता तथा शील, सुघराई और लाज से युक्त तो होना माना है[३], परन्तु भानुमिश्र के समान स्वामिन्येवानुरक्ता[४], मतिराम के समाज 'लाजवती निसिदिन पगी निज पति के अनुराग[५]', का उल्लेख नहीं किया है। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ने स्वकीया में परम्परानुसार शील, रूप, लज्जा आदि का होना ही आवश्यक माना है/परन्तु अपने पति के प्रति अनन्य प्रेम का उल्लेख भी नहीं किया है जो आगे उनके द्वारा मान्य स्वकीया के असमान पति का भेद[६] को देखते हुए तर्क संगत प्रतीत होता है, क्योंकि असमान पतिका में पति के प्रति अनन्य प्रेम की संभावना नहीं मानी जा सकती। हां, वह शील, लज्जा आदि से युक्त हो कर पति की सेवा कर सकती है, जैसा कि गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने लक्षण में कहा है[७]। अत: गोविन्द गिल्ला भाई

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१ पृ०२ छं० १४।
२- तुलनीय है : हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा०सत्यदेव चौधरी, पृ०१६।
३- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१, पृ०२ छं० १५।
४- रस मंजरी पृ० ५ भानुदत्त।
५- रसराज - मतिराम छं० १०।
६- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१ पृ०१३ छं० ६६।
७- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१, पृ०२ छं० १५।

का लक्षण उनके विवेचन की दृष्टि से तर्क संगत कहा जा सकता है परन्तु वह रीति आचार्यों की परम्परा के अनुरूप नहीं है।

रसलीन ने अपने 'रस प्रबोध' में स्वकीया नायिका का एक भेद पति दु:खिता भी माना है, जिसके तीन भेद, मूढ पतिदुखिता, बाल पति दुखिता और वृद्ध पति दुखिता उन्होंने माने हैं।[1] गोविन्द गिल्ला भाई ने रसलीन की पति दुखिता को ही असमान पतिका नाम दिया है और उसके चार भेद किये हैं[2] १- लघु पतिका, २- वृद्ध पतिका, ३- विरूप पतिका, ४- मूर्ख पतिका।

हिन्दी रीति आचार्यों में कुमार मणि ने स्वकीया के स्वकीया और पतिव्रता भेद माना है, तथा पतिव्रता में पति के प्रति क्रोधादि की संभावना न होने के कारण खंडितादि भेद नहीं माने।[3] गोविन्द गिल्ला भाई ने भी स्वकीया के मूलत: दो ही भेद माने हैं : १- साधारनि स्वकीया, २- पतिव्रता स्वकीया।[4] साथ ही कुमार मणि के समान उन्होंने भी पतिव्रता के विषय में लिखा है कि :

पति सेवे सो पतिव्रता वामें धरे न मान।
धीरादिक अरु खंडिता साधारनि में जाने।[5]

सामान्यत: स्वकीया को आचार्यों ने मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा के रूप में नायिका की अवस्था के आधार पर वर्गीकृत किया है।[6] गोविन्द गिल्ला भाई ने भी इस वर्गीकरण को यथावत् स्वीकृत रखा है।[7] भानुदत्त के आधार पर

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास/षष्ठम भाग-सं० डा० नगेन्द्र, पृ०३६६।
२- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१, पृ०१३, १४ छं० १५ से १०३।
३- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०२।
४- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१, पृ०२ छं० १६।
५- वही, पृ०२, छं० १७।
६- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०२।
७- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१, पृ०३।

पर हिन्दी के आचार्यों ने मुग्धा को एक ओर ज्ञात यौवना, अज्ञात यौवना और दूसरी ओर नवोढ़ा, विश्रव्ध नवोढा के रूप में बंटा है,[१] गोविन्द गिल्ला भाई ने यहां भी हिन्दी के आचार्यों का अनुसरण किया है,[२] साथ ही मध्या के विवेचन में भी उन्होंने हिन्दी के अधिकांश आचार्यों की परम्परा के अनुसार, जिन्होंने भानुदत्त का अनुसरण नहीं किया है,[३] मध्या के भेद नहीं किये हैं[४]। इसी प्रकार कृपाराम, तोष, रसलीन, पद्माकर आदि के समान,[५] गोविन्द गिल्ला भाई ने भी प्रौढ़ा के केवल दो ही भेद माने हैं : १- आनन्द संमोहिता, २- रति प्रिया।

भोज के अपवाद के साथ संस्कृत में रुद्रट से लेकर रूप गोस्वामी तक सभी आचार्यों ने तथा हिन्दी के प्राय: सभी रीतिकालीन आचार्यों ने पति के अपराध के कारण मान के आधार पर मध्या और प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा नामक भेद किये हैं,[७] जो गोविन्द गिल्ला भाई को भी मान्य हैं, उन्होंने इस बात को और भी स्पष्ट कर कह दिया है कि मुग्धा में इस प्रकार मान के संभव[७क] न होने के कारण ये भेद मध्या और प्रौढ़ा में ही सम्भव हो सकते हैं।

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०२।

२- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१,पृ०४ से ६ छं० २७ से ४७।

३- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०२।

४- तुलनीय है : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१ पृ०७।

५- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०२।

६- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१ पृ० ८, ६।

७- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०३।

७क- ,, : शृंगार सरोजिनी, पृ० १०,छं० ७०।

रुद्रट और संस्कृत के बाद के आचार्यों ने स्वकीया के ज्येष्ठा कनिष्ठा नामक भेद भी किये हैं, परन्तु हिन्दी के आचार्यों में से कुछ ने यह भेद माना है और कुछ ने नहीं[1]। गोविन्द गिल्ला भाई ने लिखा है कि कुछ आचार्य केवल दो ही भेद मानते हैं - १- ज्येष्ठा और कनिष्ठा तथा कुछ तीन भेद मानते हैं : १- ज्येष्ठा, २- कनिष्ठा, ३- ज्येष्ठाकनिष्ठा[2]। परन्तु उन्होंने अपना अभिमत स्पष्टता से नहीं दिया है बल्कि दोनों प्रकार के भेदों के लक्षण-उदाहरण दे कर दोनों पक्षों से अपनी सहमति प्रगट की है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि स्वकीया-नायिका के वर्णन में गोविन्द गिल्ला भाई ने यत्किंचित् मौलिकता एवं विषय प्रतिपादन की सुस्पष्टता का तो परिचय दिया ही है, साथ ही लक्षणों के अनुरूप उदाहरण देकर विषय पर अपने अधिकार को स्पष्टता से सिद्ध कर दिया है। यद्यपि सामान्यत: उन्होंने हिन्दी रीति आचार्यों की परम्परा का ही अनुगमन किया है परन्तु बीच बीच में कुमारमणि, रसलीन आदि आचार्यों के प्रभाव के कारण उनमें सामान्य परम्परा से भिन्न कुछ भेद-विस्तार भी दृष्टिगोचर होता है। परन्तु परकीया और गनिका के विवेचन में जो भेद विस्तार देखने को मिलता है उसकी तुलना में यह बहुत कुछ संयमित ही कहा जायेगा।

आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ने स्वकीया की अपेक्षा परकीया और सामान्या नायिकाओं के भेद विस्तार में अधिक रुचि प्रदर्शित की है। परन्तु जैसे जैसे भेद विस्तार बढता गया है वैसे वैसे त्रुटियों की संभावना भी बढ़ती गयी है। इसीलिए इन नायिकाओं के विषय में विचार करने से पूर्व इन नायिकाओं के गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा मान्य सारे भेदोपभेद यहां तालिका रूप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०३।

२- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१, पृ० १०-११

परकीया का प्रथम वर्गीकरण

- परकीया
  - अनूढा
  - ऊढा
    - असाध्या
      - १- धर्म सभीता
      - २- गुरुजनभीता
      - ३- प्रेमरहिता
      - ४- परिजनरुध्या
      - ५- स्वामीस्नेहा
      - ६- निरलोभा
      - ७- अतिकांत्या
      - ८- ईर्ष्यावती
      - ९- लाजवती
      - १०- बहुतप्रसूता
      - ११- एक आसक्ता
    - दु:साध्या
      - १- खल वेष्टित
      - २- गुरुजनभीता
      - ३- मानवती
      - ४- गर्विता
      - ५-धनवती
      - ६- दूतीवर्जिता
      - ७-चपलमना
      - ८- लोकभीरू
    - सुखसाध्या
      - १- लघुपतिका
      - २- लोभिनी
      - ३- वृद्धपतिका
      - ४- करुपपतिका
      - ५- षंढपतिका
      - ६- व्याधितपतिका
      - ७- मुर्खपतिका
      - ८- परिचारिका
      - ९- ~~[illegible]~~ विधवा
      - १०- अर्भकइच्छाधारिनी
      - ११- भयवर्जिता
      - १२- नाथनेहवर्जिता
      - १३- विदेशपतिका
      - १४- दुर्वलपतिका
      - १५- सौरिछंडिता
      - १६- विवाहिता
      - १७- निरंकुशा
      - १८- विरहवती
      - १९- कामवती
      - २०- नवयौवन की धारिता
      - २१- अभावपतिका

२२- नवीन गर्भ की धारिता
२३- ऋतुस्नाता
२४- परिहासिनी
२५- व्यसनी की वनिता
२६- हरिता
२७- छलिता
२८- श्रमवती

परकीया का द्वितीय वर्गीकरण

- परकीया
  - अनूढा
    - उद्बोधिता
    - उदबुध्या
  - ऊढा
    - उदबोधिता
    - उद्बुध्या

- उद्बुध्या
  - रूपासक्ता (उत्तम)
  - प्रेमासक्ता (मध्यम)
  - गुणासक्ता (अधम)
  - कामासक्ता (अधमाधम)

परकीया का तृतीय वर्गीकरण

परकीया

- गुप्ता
  - १- भूत सुरत गुप्ता
  - २- भविष्य सुरत गुप्ता
  - ३- वर्तमान सुरत गुप्ता
- विदग्धा
  - १-वचन विदग्धा
  - २-क्रिया ,,
- लक्षिता
- कुलटा
- मुदिता
- अनुशयना
  - १-मिलन स्थान विघटन निश्चितानुशयना
  - २-भावी मिलन स्थान शोचिता संदिग्धानुशयना
  - ३- संभावितनुशयना ।

सामान्या का वर्गीकरण

सामान्या या गनिका

- स्वतंत्रा
- जननी अधीना
- नियमा

उक्त तालिकाओं से स्पष्ट हो जाता है कि परकीया के भेदोपभेद में गोविन्द गिल्ला भाई ने तोष, रसलीन आदि हिन्दी के उन विशिष्ट आचार्यों का अनुसरण किया है जिन्होंने नायिका भेद में विस्तार की प्रवृत्ति का परिचय दिया है ।

हिन्दी में संस्कृत के आचार्यों के अनुसार ऊढ़ा और अनूढ़ा के रूप में परकीया का वर्गीकरण नन्ददास, सुन्दर, जसवंत सिंह आदि कुछ आचार्यों को छोड़ कर सभी आचार्यों ने किया है।[१] साथ ही भानुदत्त के अनुसार परकीया का

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०३ ।

गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना तथा मुदिता नामक षट् भेद कुछ शाब्दिक भेद के साथ हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने स्वीकृत किये हैं[१]। गोविन्द गिल्ला भाई ने परम्परानुसारी परकीया के उक्त दोनों भेद तो स्वीकृत किये हैं हैं साथ ही तोष और रसलीन द्वारा मान्य दृष्टि ज्येष्ठा, असाध्या, और साध्या[२] और उद्बुद्धा, उद्बोधितानामक भेदों को, जो अकबरशाह पर मूलत: आधारित हैं[३], मान्य रखा है। इसी प्रकार दास की उद्भूता और उद्बोधिता को[४] भी स्वीकार करते हुए गोविन्द गिल्ला भाई ने परकीया के इन भेदोपभेदों को भिन्न प्रकार से संजोया है। उदाहरणार्थ दास और रसलीन ने उद्बुद्धा और उद्बोधिता को अनूढा के भेद के रूप में ही स्वीकृत किया है[५], परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने ऊढा और अनूढा दोनों के ये भेद माने हैं। उन्होंने कहा है कि:

ऊढा अरु अनूढा विशे● उभय भेद पुनि और[६]।
प्रथम कहत उदबोधिता उदबुद्धा पुनि और।

स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने लीक का ही अनुगमन नहीं किया है वरन् स्वयं स्वतंत्र चिन्तन शक्ति का भी परिचय दिया है। इसी प्रकार दास ने जहां उद्भूता की दो स्थितियां अनुरागिनी और प्रेमासक्ता तथा उद्बोधिता की असाध्या और दु:खसाध्या मानी हैं[७], वहां गोविन्द गिल्ला भाई ने उद्बोधिता का कोई भेद नहीं माना, परन्तु ऊढाउदबुध्या और अनूढा-उद्बुध्या दोनों के चार भेद किये हैं : रूपासक्ता, प्रेमासक्ता, गुणासक्ता और कामासक्ता, जिन्हें उन्होंने क्रमश: उत्तम, मध्यम, अधम और अधमाधम नायिका भी कहा है[८]। रसलीन

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०३।
२- ,, : वही, पृ० ४०३।
३- ,, : रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य-डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० ४५१।
४- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०३।
५- ,, : रीतिकालीन कविता और शृंगाररस विवेचन-डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ० १११।
६- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१, पृ०२५ छं० १८२।
७- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०३।
८- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१ पृ०२५ छं० २७।

ने वचन विदग्धा के साथ जैसे स्वयं दुतिका का उल्लेख किया है[1] वैसे ही गोविन्द गिल्ला भाई ने भी किया है,[2] परन्तु रसलीन के समान क्रिया विदग्धा, लक्षिता आदि और भेदोपभेद[3] (उन्होंने) स्वीकृत नहीं किये।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने भिखारीदास के समान ही अपने समय तक की सारी उपलब्ध नायिका-भेद सम्बन्धी सामग्री का आलोड़न कर तोष, रसलीन, भिखारीदास की विशिष्ट आचार्य परम्परा और अन्य आचार्यों की सामान्य परम्परा में अपनी स्वतंत्र योजना के अनुसार समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। एक प्रकार से उनके परकीया वर्णन की सारी सामग्री परम्परा प्राप्त ही है परन्तु जिस रूप में वह उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी है उस रूप में वह किसी आचार्य विशेष में नहीं मिलती। गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व का महत्व इस परम्परा प्राप्त सामग्री को नवीन रूप में प्रस्तुत करने में है। क्योंकि इस परम्परा प्राप्त सामग्री को उन्होंने नवीन रूप से प्रस्तुत कर अपनी मौलिक चिन्तन-शक्ति का परिचय अवश्य दिया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गोविन्द गिल्ला भाई जैसे-जैसे परकीया के भेद विस्तार में उलझते गये हैं, वैसे-वैसे त्रुटियों की संभावना बढ़ती गयी हैं। उदाहरणार्थ ऊढा के असाध्या भेद और स्वकीया के असमान पतिका भेद में कोई मूलभूत अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। क्योंकि स्वकीया असमान-पतिका के लक्षण में कवि ने असमान पति के प्रति नायिका के प्रेम का उल्लेख नहीं किया है,[4] साथ ही उदाहरणों में भी पति के प्रति नायिका का अप्रेम तथा अन्य नायक के साथ असंबंध ही वर्णित है[5]। आशय यह कि परकीया ऊढ़ा

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ०४०४।

२- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१ पृ०३० छं० २१८।

३- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०४।

४- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१ पृ०१३ छं० ६६।

५- ,, : वही, पृ० १३ छं० ६७।

असाध्या और स्वकीया असमानपतिका अपनी अपनी स्थितियों में समान ही रहती हैं। अत: सैद्धान्तिक दृष्टि से परकीया ऊढा असाध्या की परिभाषा के कारण स्वकीया असमानपतिका के लक्षण में कुछ परिवर्तन अपेक्षित रहता है, जो गोविन्द गिल्ला भाई की दृष्टि से भेद विस्तार में उलझ जाने के कारण, बच गया है। आशय यह कि अनेक स्रोतों का एक ही साथ सविस्तार उपयोग करने के कारण कवि अपने मुख्य विषय के विभिन्न अंगों में सतर्क संबंध निर्वाह करने में असमर्थ रहा है।

इसी प्रकार सैद्धान्तिक दृष्टि से परकीया ऊढा असाध्या के एक भेद स्वामी स्नेहा[१], को परकीया नहीं कहा जा सकता। साथ ही दुस्साध्या के भेद चंचलमना तथा सुखसाध्या के भेद निरंकुशा, व्यसनी, हरिता आदि को भी सैद्धान्तिक दृष्टि से पर पुरुष के प्रति प्रेम के अभाव में परकीया नायिका कैसे कहा जा सकता है। क्योंकि परकीया में पर पुरुष प्रेमासक्ति उसकी प्रधान विशेषता और व्यावर्तक धर्म माना जाता है। परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा मान्य परकीया के असाध्या आदि भेद के कुछ उपभेद प्रेमी प्रेमिका रूप नायक नायिका के सम्बन्ध पर आधारित न होकर, प्रेम-शून्य किसी पुरुष के, प्रेम शून्य किसी ऊढा नारी के यौन सम्बन्ध की संभावना या असंभावना पर आधारित है। अत: कहा जा सकता है कि भेद-विस्तार के प्रवाह में गोविन्द गिल्ला भाई अनेक सैद्धान्तिक विरोधों के लिए पर्याप्त अवकाश छोड़ गये हैं। परन्तु रीतिकालीन आचार्यों की परम्परा में यह स्थिति सामान्य ही कही जायेगी, विशेष नहीं।

सामान्या नायिका के विवेचन में गोविन्द गिल्ला भाई ने कुमारमणि का अनुगमन ही विशेष रूप से किया है। कुमारमणि[२] द्वारा मान्य सामान्या के भेद, स्वतंत्रा, जनन्याधीना और नियमिता को उन्होंने[३] स्वतंत्रा, जननी अधीना और नियमा नाम दिया है। संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों ने सामान्या

१- तुलनीय है : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१, पृ० १७ छं० १२४ और देखिए: तालिका।

२- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०४।

३- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१, पृ०३४ छं० ३४७, ३४६।

नायिका के वर्णन में विशेष अभिरुचि प्रदर्शित नहीं की है।[1] गोविन्द गिल्ला भाई ने न इस नायिका की पूर्ण उपेक्षा की है और न कृपाराम या रसलीन के समान इसके अधिक भेद ही किये हैं। इस प्रकार सामान्या के वर्णन में गोविन्द गिल्ला भाई ने मध्यम मार्ग ही अपनाया है।

स्वकीयादि नायिकाओं के वर्णन के पश्चात गोविन्द गिल्ला भाई ने रीति कालीन आचार्यों के समान अनियमित नायिकाओं और द्वादश नायिकाओं का सविस्तार विवेचन किया है, जिसे सर्वप्रथम यहां तालिका रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे इन नायिकाओं के निरूपण में गोविन्द गिल्ला भाई का रीतिकालीन आचार्यों के साथ सम्बन्ध सहज ही स्पष्ट हो सकेगा।

तालिका १

अनियमित नायिका

मानवती	गर्विता	पतिदुखिता	पतिसुखिता
१-लघु मानवती	१-प्रेम गर्विता	१- अन्य सुरतदुखिता	
२- मध्य मानवती	२-रूप गर्विता	२-मूरखपति दुखिता	
३- गुरु मानवती	३- गुन गर्विता	३- षंड पति दुखिता	
	४- कुल गर्विता	४- व्याधित पति दुखिता	
	५- धन गर्विता	५- बालक पति दुखिता	
		६- वृद्ध पति दुखिता	

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०२।

तालिका २

द्वादश नायिका

प्रोषितपतिका   खंडिता   कलहंतारिता   उत्कंठिता   विप्रलब्धा   वासकसज्जा   स्वाधीनपतिका

मुग्धा   मध्या   प्रौढा   परकीया   गनिका

अभिसारिका   प्रवत्स्यतपतिका   गच्छतपतिका   आगमिष्यतपतिका   आगतपतिका

मुग्धा   मध्या   प्रौढा   परकीया   गनिका

परकीया अभिसारिका

शुक्ला   कृष्णा   रक्ता   पीता   हरिता   लोहिता   दिवा

इन तालिकाओं से स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने इन नायिकाओं के वर्णन में भी रीतिकालीन आचार्यों की सामान्य परम्परा का अनुसरण न कर विशिष्ट परम्परा का ही अनुगमन किया है। साथ ही जैसे स्वकीयादि नायिकाओं के वर्णन में उन्होंने किसी एक विशिष्ट आचार्य का अनुकरण नहीं किया है उसी प्रकार इन नायिकाओं के वर्णन में भी उन्होंने किसी एक आचार्य का अनुसरण नहीं किया है, वरन् अपनी स्वतंत्र बुद्धि के अनुसार इन नायिकाओं का विवेचन तथा वर्गीकरण किया है। इन नायिकाओं के विवेचन तथा वर्गीकरण के विषय में हिन्दी तथा संस्कृत के आचार्यों में एकरूपता नहीं है,[१]

१- तुलनीय है: हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०४,४०५ ।

अत: गोविन्द गिल्ला भाई ने जो इन नायिकाओं के विवेचन में स्पष्टता का परिचय दिया है वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उदाहरणार्थ अनियमित नायिकाओं के विवेचन के पूर्व ही उन्होंने सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा है कि :

> औरनायिका होत हैं सब के अंतर मांहि
> वाहो को वरनन करों विधि तें बेश सराहि।
> स्वकीया औंर हि परकीया तीजी गनिका जोय।
> ता तीनो में होत हैं नवल नायका सोय।
> कोऊ स्वकीया में रचत कोऊ परकिय मांहि।
> कोऊ गनिका में रचे नियम ताहि को नांहि।
> नियम बिना पुनि होत वह ताते क्रम कछु नांहि।
> जैसी जाको राय है वरनत तैसी तांहि[1]।

स्पष्ट है, इन पंक्तियों में गोविन्द गिल्ला भाई ने हिन्दी के रीति आचार्यों की स्थिति स्पष्ट कर दी है। क्योंकि विभिन्न आचार्यों ने इन नायिकाओं का वर्णन तथा वर्गीकरण बिलकुल समान रूप से नहीं किया है[2]। गोविन्द गिल्ला भाई ने इसीलिए इन्हें अनियमित नायिका कहा है[3], आगे इनकी उत्पत्ति स्थान आदि का वर्णन करते हुए कहा हैकि :

> मानवती कढि मान ते दिल में देखि विचार।
> स्वाधिनपतिका तें कढी औंर गर्विता नार।
> अन्यसुरति दुखिता कढी खंडिता ते खास।
> स्वाधिनपतिका ते बहुरि पतिसुखिता परकाश।
> मानवती अरु गर्विता गनिका में कम होत।
> तैसें औंरहि उचित थल समझो सब कवि गोत[4]।

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१ पृ०३५ छं० ३५५ से ३५८।

२- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०४, ४०५।

३- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१, पृ०३५।

४- वही, पृ०३५ छं० ३६१ से ३६३।

यद्यपि इन दोहों में गोविन्द गिल्ला भाई ने अनियमित नायिका और द्वादश नायिकाओं के सम्बन्ध की चर्चा करनी चाही है, परन्तु दृष्टि मौलिक होते हुए भी व्याख्या सापेक्ष है,कवि ने उसे स्पष्ट करने का प्रयास नहीं किया है। परन्तु अन्यत्र जहां भी व्याख्या की अपेक्षा रही है गोविन्द गिल्ला भाई ने वहां उसकी व्याख्या अवश्य की है। यहां कदाचित उनके पूर्ववर्ती आचार्यों में किसी विशेष व्यवस्था के अभाव के कारण वे कोई मौलिक व्याख्या देने में असमर्थ रहे हैं। वैसे सर्वत्र उन्होंने शंकास्पद स्थलों पर विशेष रूप से व्याख्या करने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ मानवती, खंडिता और अन्यसुरति दुखिता नायिकाओं के सूक्ष्म अन्तर को कवि ने इस प्रकार स्पष्ट किया है :

दोष लखी मुख पर कहे सोइ खंतिता नार।
अन्य सुरत दुखिता बहुरि पाछल करत उचार।
मौन गहत सो माननी समझो सब तजि खेद।
भरम नशावन के लिये भाखे पुनि यह भेद[१]।

नायिका-भेद के उक्त विस्तार के साथ साथ गोविन्द गिल्ला भाई ने गुण के आधार पर नायिका के उत्तम, मध्यम, और अधम नामक भेद किये हैं[२], तथा कामशास्त्र के अनुसार जाति के आधार पर पद्मिनी , चित्रनी, शंखनी और हस्तिनी नामक भेद भी किये हैं[३]। इतना ही नहीं, वरन् भानुदत्त प्रवर्तित तथा हिन्दी में केवल रसलीन और भानु द्वारा स्वीकृत नायिकाओं का दिव्या, अदिव्या तथा दिव्यादिव्या नामक भेद[४], भी गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा स्वीकृत किया गया है[५]। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने हिन्दी में प्रचलित नायिका भेद के सभी प्रमुख आधारों के अनुसार नायिकाओं का वर्णन तथा वर्गीकरण किया है।

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१ पृ०३६ छं० ३६५ से ३६६।
२- वही, पृ० ५७ से ५८ छं० ५१२ से ५२१।
३- वही, पृ० ५६ से ६१ छं० ५२२ से ५३५।
४- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४०६।
५- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१ पृ०६१ से ६२ छं० ५३६ से ५४४।

हां, देव के समान देश आदि के अनुसार उनका वर्णन अवश्य नहीं किया है। परन्तु उन्होंने हिन्दी के विशिष्ट आचार्यों द्वारा मान्य नायिका भेद के तर्क सम्मत समस्त विस्तार को अपने ग्रंथ में समाविष्ट करने का सफल प्रयास किया है, जिसमें उन्होंने अपनी मौलिक चिन्तन-शक्ति का परिचय भी दिया है, साथ ही उनका समूचा नायिका-भेद-विवेचन अत्यन्त सुस्पष्ट भी कहा जा सकता है। अलंकार निरूपण के समान उन्होंने यहां यद्यपि गद्य का प्रयोग नहीं किया है, परन्तु विषय विवेचन में कहीं दुरूहता दृष्टिगोचर नहीं होती, स्पष्ट विवेचन उनके नायिका भेद निरूपण की एक प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। यद्यपि उन्होंने संस्कृत के आचार्यों की सहायता भी यत्रतत्र नायिका भेद निरूपण में ली है, परन्तु मूलत: तथा प्रधानत: वे हिन्दी के रीति आचार्यों की परम्परा में ही आते हैं।

गोविन्द गिल्ला भाई का नायक भेद निरूपण

संस्कृत में सर्वप्रथम नायक का उल्लेख, व्याख्या और वर्गीकरण भरत के नाट्यशास्त्र में कथानक के नेता के रूप में मिलता है।[१] नाट्य-शास्त्र की इस परम्परा को आगे आचार्यों ने काव्यशास्त्र में उतारा ही नहीं, वरन् विकसित भी किया, परन्तु नायिका की तुलना में नायक भेद अधिक विकसित न हो सका, जिसके अनेक सामाजिक एवं मनोविज्ञानिक कारण विद्वानों ने माने हैं।[२]

भरत से लेकर अकबरशाह तक संस्कृत के अनेक आचार्यों ने विभिन्न आधारों पर नायक के भेदोपभेद किये हैं।[३] नाट्य-शास्त्र के धीरोदात्त आदि नायक, जिसके मूल में कथानक को विद्वानों ने माना है, हिन्दी में कुमारमणि अथवा गोविन्द गिल्ला भाई जैसे नाति प्रसिद्ध आचार्यों द्वारा ही स्वीकृत

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३६३।

२- ,, : वही, पृ० ३६८।

३- ,, : हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १३७।

किये गये हैं।[१] परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने धीरोदात्त आदि नायकों के वर्गीकरण का आधार, स्वभाव माना है।[२] नायिका के साथ सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर नायक का पति, उपपति और वैशिक के रूप में वर्गीकरण यद्यपि संस्कृत में भानुदत्त द्वारा स्वीकृत मिलता है, परन्तु संस्कृत में यह भेद इतना प्रचलित नहीं मिलता जितना हिन्दी में मिलता है।[३] गोविन्द गिल्ला भाई ने नायिका भेद के समान ही नायक-भेद में भी संस्कृत की उक्त परम्पराओं का पालन कर कुमारमणि, रसलीन, तोष, देव आदि विशिष्टआचार्यों की परम्परा को आगे बढ़ाया है, जिन्होंने नायक-नायिका भेद का विशेष रूप से निरूपण किया है।[४] हिन्दी में सामान्य आचार्यों ने नायक-भेद की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है।[५] यद्यपि गोविन्द गिल्ला भाई ने नायिका भेद के समान ही नायक भेद में पूर्ण भेद-विस्तार की प्रवृत्ति का परिचय दिया है, परन्तु नायिका भेद की तुलना में नायक भेद अधिक व्यापक नहीं कहा जा सकता।

नायिका-भेद के विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने विवेचन में किसी एक विशिष्ट आचार्य का अनुसरण नहीं किया है, उसी प्रकार नायक भेद में भी उन्होंने किसी एक आचार्य विशेष का अनुसरण न करके अपनी स्वतंत्र चिन्तन शक्ति का परिचय दिया है। यहां गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा मान्य नायक-भेद को तालिका रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे हिन्दी के आचार्यों की परम्परा के साथ उनका सम्बन्ध तथा उनका मौलिक योगदान स्वत: ही स्पष्ट हो जायेगा। विषय के निरूपण आदि के विषय में जो कुछ नायिका भेद के अध्ययन के प्रसंग में कहा जा चुका है, वह नायक भेद निरूपण के विषय में भी सत्य है, अत: उस विषय में यहां पिष्टपेषण करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३६३।
२- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१ पृ०७१ छं० ६०६।
३- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३६६।
४- ,, : वही, पृ० ३६८, ३६६।
५- ,, : वही, पृ० ३६८।

नायक भेद

तालिका : नायक भेद, स्वाभावानुसार

- नायक
  - धीरोदात्त
  - धीरोद्धत्त
  - धीरललित
  - धीरप्रशान्त

तालिका : नायक भेद, संबधानुसार

- नायक
  - पति
    - अनुकूल
    - दक्षिण
    - धृष्ठ
    - शठ
  - उपपति
    - ऊढ
      - उद्‌बोधित
      - उद्‌बुधु
    - अनूढ
      - उद्‌बोधित
      - उद्‌बुद्ध
  - वैशिक

उपपति नायक

- गुप्त
  - १- भूत सुरति गुप्त
  - २- भविष्य सुरति गुप्त
  - ३- वर्तमान सुरति गुप्त
- विदग्ध
  - १-वचनविदग्ध
  - २-क्रिया ,,
  - ३
- लक्षित
- लंपट
- मुदित
- अनुशयन
  - १-निश्चितानुशयन
  - २-संदिग्धानुशयन
  - ३-संभावितानुशयन

अनियमित नायक

- मानी
  - रूपमानी
  - गुनमानी
- अनभिज्ञ

- अष्टनायक
  - प्रोषित
  - खंडित
  - कलहंतरित
  - विप्रलब्ध
  - उत्कंठित
  - वासकसज्ज
  - पतिस्वाधीन
  - अभिसारक

- नायक
  - उत्तम
  - मध्यम
  - अधम

- नायक
  - दिव्य
  - अदिव्य
  - दिव्यादिव्य

प्रस्तुत तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने नायिका भेद के प्राय: सभी आधार नायक-भेद में भी स्वीकृत किये हैं। आशय यह कि जिन जिन आधारों पर उन्होंने नायिका-भेद किया है उन उन आधारों पर नायक भेद भी किया है, परन्तु नायक भेद का उतना अधिक विस्तार नहीं किया जितना नायिका भेद में किया है। वस्तुत: नायक भेद उनका मुख्य विषय नहीं था, उन्होंने केवल ग्रंथ में शृंगार रस के पूर्ण विवेचन के आग्रह से ही नायक आदि की चर्चा की है। परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने नायक भेद का जितना विवेचन किया है, उतना विवेचन ही उन्हें हिन्दी के विशिष्ट रीति आचार्यों की श्रेणी में बिठाने के लिए पर्याप्त है, क्योंकि नायक भेद का इतने विस्तार के साथ विवेचन रीतिकाल के सामान्य आचार्यों ने नहीं किया है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई के नायिका-भेद के समान नायक भेद निरूपण भी हिन्दी के विशिष्ट आचार्यों की तरह सविस्तार है और सुस्पष्ट है।

गोविन्द गिल्ला भाई का सखी-सखा आदि निरूपण

शृंगार रस के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत सखी दुती का वर्णन किया जाता है। मतिराम ने लिखा है कि :

सखी दुतिका जानिये उद्दीपन के भेद।
नायक अरु नायका को हरें विरह को खेद।[१]

भरत मुनि ने सखी को दुती का एक भेद माना है।[२] परन्तु भानुदत्त ने सखी और दुती का विभेद स्पष्टत: स्वीकार किया है।[३] यद्यपि हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने भानुदत्त के अनुसरण पर सखी दुती का अन्तर माना है, परन्तु कुछ आचार्य ऐसे अवश्य हैं जिन्होंने भानु दत्त र संस्कृत के अन्य आचार्यों का अनुसरण कर दुती को सखी का एक भेद माना है।[४] गोविन्द गिल्ला भाई ने सखी और दुती का अन्तर मान्य रखा है।[५] तथा चन्द्रशेखर[६] के समान ही केवल सखी के अंतरंगिनी, बहिरंगिनी नामक दो भेदों को ही माना है। भानु दत्त ने सखी के चार कर्म मंडन, उपालंभ, शिक्षा और परिहास को माना है[७] जिन्हें गोविन्द गिल्ला भाई ने भी माना है।[८] सखी के समान ही गोविन्द गिल्ला भाई ने दुती के आठ कार्यों का उल्लेख भी किया है, उन्होंने लिखा है कि :

परशंस निन्दा विनय विरह निवेदन गाय।
संदेशा चेताइवो बहुरि मनावन भाय।
और मिलावन उभय को रस ग्रंथन में जोय।
आठ कर्म वह दुति के कहत सकल कवि लोय।[९]

१- रसराज - मतिराम छं० २८७।
२- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ०८०३।
३- ,, : वही, पृ० ८०३।
४- ,, : वही, पृ० ३३८।
५- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१९१ पृ०६२ छं० ५४५ पृ०६५ छं० ५६६।
६- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८०४।
७- ,, : रस मंजरी - भानुदत्त, पृ०१५६।
८- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१९१ पृ०६३ छं० ५५३ आदि।
९- ,, : वही, पृ०६५, छं०५६७, ५६८।

गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा मान्य दूती के अष्ट कर्म, हिन्दी के आचार्यों में रसलीन, भानुदत्त[1], हरिऔध, गुलाबराय आदि के द्वारा मान्य दूती कर्म के अधिक निकट हैं। कृपाराम द्वारा मान्य उत्तमा, मध्यमा और अधमा नामक दूती[2] के भेद हिन्दी के अधिकांश आचार्यों द्वारा स्वीकृत किये गये हैं, परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने उक्त तीनों प्रकार[3] की दूतियों को क्रमश: दत्ता, दत्तादत्ता और अदत्ता नामों से अभिहित किया है। साथ ही स्वयं दूतिका को स्वीकृत करते हुए वचन-दिग्धा नायिका से उसका स्पष्ट भेद भी सिद्ध किया है[4]। नायिका की सहायिका को जिस प्रकार काव्य-शास्त्र में सखी कहा गया है उसी प्रकार नायक के सहायक को सखा कहा जाता है, जिसका वर्णन संस्कृत के कई आचार्यों ने किया है[5]। हिन्दी में सर्वप्रथम सुन्दर और तोष ने इनका उल्लेख किया है[6]। गोविन्द गिल्ला भाई ने इन आचार्यों के अनुसार ही नायक के सखा को नर्म सचिव कहा है[7], तथा पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक नामक सखा के चार भेदों का भी वर्णन किया है[8]।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने हिन्दी के विशिष्ट आचार्यों के समान नायक नायिकाओं के सहायक तथा दूतियों का वर्णन किया है, जिसमें उन्होंने किसी विशेष प्रकार की मौलिकता का परिचय नहीं दिया है। परन्तु उनका विवेचन तथा भेद निरूपण अत्यन्त स्पष्ट एवं निर्भ्रान्त है।

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३३६।

२- ,, : वही, पृ० ३३८।

३- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१, पृ०६८ छं० ५८६।

४- ,, : वही, पृ० ७० छं० ५६८ से ६०१।

५- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३६८।

६- ,, : वही, पृ० ३६८।

७- ,, : शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१, पृ०८६ छं०७४७।

८- ,, : वही, पृ० ६०, ६१ छं० ७४८ से ७५६।

गोविन्द गिल्ला भाई का शेष काव्यांग विषय निरूपण

पहले दी गयी गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा चर्चित काव्यशास्त्र के विषयों की तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में अलंकार और नायक नायिकादि भेद निरूपण के अतिरिक्त काव्य-लक्षण, भेद, प्रयोजन आदि का भी विवेचन किया है। सामान्यत: विविध काव्यांग निरूपक आचार्यों के ग्रंथों में ही इन विषयों की चर्चा मिलती है। परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने विशेष रूप से अपने अलंकार निरूपक ग्रंथों में भूमिका रूप में इन विषयों की चर्चा की है। वस्तुत: यह गोविन्द गिल्ला भाई की वह विस्तार-प्रियता है जिसके कारण उन्होंने अपने सभी ग्रंथों में मूल विषय के पूर्व किसी न किसी प्रकार की भूमिका दी है, तथा जिनके कारण इनके अलंकार निरूपक ग्रंथों में अलंकार विवेचन के पूर्व काव्य-शास्त्र के अन्य विषयों की चर्चा की है। गोविन्द हजारा में कवित्त सवैया छंदों का विवेचन तथा शृंगार सरोजिनी में शृंगार रस का विवेचन उनके मूल विषय के रूप में ही हुआ है। अन्य ग्रंथों में शेष विषयों की चर्चा भूमिका रूप में ही मिलती है। अलंकार तथा नायक नायिका भेद आदि के अतिरिक्त गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों में जिन विषयों की चर्चा की है उनका अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

१- काव्य लक्षणादि वर्ग
२- रस लक्षणादि वर्ग
३- छंद लक्षणादि वर्ग
४- भाषादि वर्ग

१-काव्यलक्षणादि वर्ग

इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले प्राय: सभी विषयों की चर्चा मुख्य रूप से गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने `वक्रोक्ति विनोद `नामक ग्रंथ में की है तथा गौण रूप से`गोविन्द हजारा`शब्द विभूषण,`श्लेष चन्द्रिका` और `अलंकार अंबुधि `नामक ग्रंथों में की है। इन ग्रन्थों में काव्य लक्षण, काव्य प्रशंसा,

काव्य प्रयोजन, काव्य भेद, काव्य फल, काव्यांग, आदि विषयों की चर्चा मिलती है जो प्रत्यक्षत: हिन्दी के रीतिकालीन विविध काव्यांग निरूपक आचार्यों तथा परोक्षत: संस्कृत के आचार्यों पर आधारित है।

प्राचीन संस्कृत-शास्त्र ग्रंथों में शास्त्र-प्रयोजन देने की परिपाटी मिलती है, जिनका अनुसरण हिन्दी के कुछ आचार्यों ने भी किया है।[१] परन्तु काव्य शास्त्र के ग्रंथों में काव्य प्रशंसा के विषय में सामान्यत: कुछ भी नहीं लिखा गया। गोविन्द गिल्ला भाई ने संस्कृत के नीति ग्रंथों के अनुसार, जिनमें काव्य प्रशंसा के कुछ छंद मिलते हैं, अपने 'वक्रोक्ति विनोद' नामक ग्रंथ में कुछ छंद लिखे हैं, जिनकी पुनरुक्ति शब्द विभूषण[३], तथा 'अलंकार अंबुधि'[४] में भी मिलती है। काव्य-प्रशंसा के विषय में सारांश रूप में इतना ही लिखा है कि काव्य में सबको मोहित करने की शक्ति होती है तथा जो काव्य से प्रभावित न हो वह या तो योगी है या पशु[५]।

काव्य-प्रयोजन तथा काव्य-फल के विषय में गोविन्द गिल्ला भाई ने जो लिखा है उससे स्पष्ट है कि उनके अनुसार काव्य प्रयोजन वह है जिसके कारण पाठक काव्य पढ़ता है, अर्थात् काव्य-पाठ से पाठक को जो प्राप्त हो वही काव्य-प्रयोजन है। इसीलिए उन्होंने लिखा है कि काव्य-प्रयोजन, आनन्द या रस है[६]। अन्यत्र काव्य-प्रयोजन के लिए 'आवश्यकता' शब्द का भी प्रयोग किया है[७]। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि काव्य - प्रयोजन की चर्चा गोविन्द गिल्ला भाई ने परम्परानुसार नहीं की है।

१- हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी, पृ०१०६।

२- वक्रोक्ति विनोद ह०प्र०सं० १५५ पृ० २ छं० ५, ६।

३- शब्द विभूषण ह०प्र०सं०१७३,पृ०१ छं० ४।

४- अलंकार अंबुधि ह०प्र०सं०१६५,पृ०१ छं० ४।

५- वही, पृ० १ छं० ४।

६- वक्रोक्ति विनोद ह०प्र०सं०१५५ पृ०१ छं० ४।

७- शब्द विभूषण ह०प्र०सं०१७३ पृ०१ छं० ५।

इसी प्रकार काव्य फल के विषय में गोविन्द गिल्ला भाई ने न केवल परम्परा से भिन्न रूप लिखा है वरन् उसकी विवेचना अत्यन्त सुस्पष्ट शब्दों में पद्य और गद्य में सोदाहरण की है[1]। उनके अनुसार काव्य से कवि को जो प्राप्त हो वही उसका फल है। उन्होंने लिखा है कि :

कीर्ति उपावत वित्त बढावत और विनोद उरै उपजावे।
पाप नशावत मोक्ष मिलावत कष्ट सबे निज के हि नशावे।
ज्ञान बढावत मान मिलावत चित्त महा चतुराइ धरावे।
काव्य करै जितने कवि गोविंद सोइ सदा इतने फल पावे[2]।

इसी प्रकार अन्यत्र गोविन्द गिल्ला भाई ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को भी काव्य-फल माना है, जो भामह के निम्नलिखित श्लोक पर आधारित कहा जा सकता है :

धर्मार्थकाममोक्षाणां वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधु काव्य निबंधनम्[3]।

साहित्य-दर्पणकार ने 'साधु काव्य निषेवणम्' पाठ स्वीकृत किया है[4], जिसका सम्बन्ध पाठक से होने के कारण गोविन्द गिल्ला भाई के द्वारा स्वीकृत नहीं हो सकता, क्योंकि जो पाठक को काव्य के द्वारा मिलता है वह काव्य-प्रयोजन है, काव्य-फल नहीं तथा उक्त छंद में काव्य-फल की चर्चा उन्होंने की है। काव्य-फल और काव्य-प्रयोजन शब्दों को परम्परा से भिन्न अर्थ में स्वीकृत करते हुए भी गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा कथित काव्य-फल और काव्य-प्रयोजन की विचार-धारा परम्परा में किसी न किसी रूप में मिलती अवश्य है।

१- वक्रोक्ति विनोद ह०प्र०सं० १५५ पृ०२ से ३।
२- वही, पृ०२ छं० ७।
३- काव्यालंकार - भामह १।२।
४- साहित्य-दर्पण पृ० १।

अत: कहा जा सकता है कि इस विवेचन में तथा अन्यत्र भी गोविन्द गिल्ला भाई के विवेचन में जो कुछ मौलिकता के दर्शन होते हैं वह परम्परामूलक या परम्पराधृत हैं परन्तु काव्य कारण के विषय में उन्होंने जो कुछ लिखा है वह पूर्णत: मम्मटादि की परम्परा के आधार पर ही है । [१] उन्होंने मम्मटादि के समान ही, शक्ति, प्रतिभा ,निपुणता और अभ्यास को काव्य-कारण के रूप में स्वीकृत किया है । [२]

काव्य-लक्षण के विषय में गोविन्द गिल्ला भाई ने संस्कृत के किसी आचार्य का अनुसरण नहीं किया । उन्होंने लिखा है कि :

> कोऊ कहे कविन को पिंगल मतानुसार रचना लखाय सोइ कविता प्रमानियें ।
> काऊ कहे रसमय रचना लखाय वाकों काव्य कमनीय कहि वानि ते बखानियें ।
> कोउ कहे लोकोत्तर रचना लखाय जहां कविता सोइ उर मांहि आनियें ।
> गोविंद मेरे जान जामें यह तीनों होय सोइ सुखदाय काव्य मन मांहि मानियें ।[३]

काव्य के प्रस्तुत लक्षण के विषय में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने काव्य की जो परिभाषा दी है वह हिन्दी की काव्य-परम्परा को दृष्टि में रखकर कर दी गई है । उसमें संस्कृत के आचार्यों के काव्य-लक्षणों के विषय में कवि की जागरूकता भी स्पष्ट है । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ने जैसे संस्कृत के आचार्यों ने संस्कृत काव्य को दृष्टि में रखकर काव्य का लक्षण दिया है उसी प्रकार उन्होंने भी हिन्दी काव्य-परम्परा को दृष्टि में रखकर काव्य का लक्षण दिया है । इसीलिए काव्य के लक्षण में उन्होंने पिंगल मतानुसार कह कर हिन्दी काव्य की छंदोबद्धता की ओर इंगित किया है। परन्तु वे अपने पूर्ववर्ती संस्कृत के आचार्यों या उनके अनुवर्तक हिन्दी के आचार्यों की मान्यता के अनुसार काव्य की रसमयता तथा लोकोत्तर रचनात्व

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २२८ ।

२- ,, : वक्रोक्ति विनोद ह०प्र०सं० १५५ पृ०४ छं० ६ ।

३- ,, : वही, पृ०४ छं० १० ।

आदि के विषय में जागरूक अवश्य थे। इसीलिए उन्होंने अपनी काव्य-परिभाषा में इन तत्वों की ओर संकेत कर दिया है। तथा अंत में अपना स्वतंत्र परन्तु समन्वयात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट कर उन्होंने अपनी स्वतन्त्र चिन्तन-पद्धति का तो परिचय दे ही दिया है साथ ही यह भी सिद्ध कर दिया है कि वे संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी-काव्य-परम्परा के अधिक निकट हैं तथा उसी को दृष्टि में रखकर ही वे काव्य का लक्षण दे रहे हैं। गोविन्द गिल्ला भाई की उक्त परिभाषा के अनुसार छंदोबद्ध सरस लोकोत्तर रचना ही काव्य है। परन्तु अन्यत्र दी गयी काव्य की परिभाषाओं[1] के साथ उनका कुछ तालमेल नहीं बैठता। काव्य के अंगों की चर्चा करते हुए उन्होंने उक्त परिभाषा में उक्त काव्य की छंदोबद्धता का उल्लेख नहीं किया है,[2] तथा काव्य में जिन ध्वनि, गुण, वृत्ति और अलंकारों का उल्लेख प्रस्तुत परिभाषा में नहीं किया गया, उनका उल्लेख उन परिभाषाओं में मिलता है। इसी प्रकार काव्य के भेदों की चर्चा करते समय श्रव्य-काव्य के एक भेद के रूप में गद्य को भी काव्य कहा है।[3] जिसे प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार काव्य का अनिवार्यत: छंदोबद्ध होने के कारण काव्य का एक भेद नहीं कहा जा सकता। वस्तुत: गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा दी गयी उक्त परिभाषा को उनकी काव्य विषयक सामान्य धारणा ही कहा जा सकता है, उसे काव्य की ठोस परिभाषा नहीं कहा जा सकता।

परन्तु काव्य-लक्षण की अपेक्षा गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा की गयी काव्य के शरीर तथा उसके दशांगों की चर्चा न केवल अधिक स्पष्ट एवं तर्क संगत है, वरन् कुछ मौलिकता की छाप भी लिए है। काव्य के शरीर का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है :

१- तुलनीय है : वक्रोक्ति विनोद ह०प्र०सं० २५५, पृ०४, ५ छं० ११।

२- ,, : वही।

३- ,, : वही, पृ०६ छं० १३ से १८।

शब्द अर्थ देह तामें शब्द अग्र भाग पुनि,
पृष्ट भाग अर्थ और जीव रस राजे है ।
सुन्दरता व्यंग्य पुनि भास ध्वनि भाखियतु
उकति अपूर्व सोइ वसन विराजे है ।
गुन वृत्ति रीति गुन दोष सबे दूषण है
उपमादि अलंकार भूषण सो भाजे है ।
गोविंद कहत ऐसी काव्य कामिनी की काय
विमल विशाल वर सुन्दर सो छाजे है[१] ।

प्रस्तुत छंद में कुछ पाठान्तर मिलता है, जिसके विषय में विचार आगे किया जा चुका है । यहां केवल इतना ही उल्लेखनीय है कि काव्यांगों के विषय में गोविन्द गिल्ला भाई की मान्यता संस्कृत आचार्यों के अनुसार नहीं है । यह बात अन्यत्र उनके काव्यांग विषयक विवेचन से भी स्पष्ट है, जिसे यहां कवि के शब्दों में ही उद्धृत किया जा रहा है :

"अन्यमते काव्य के दशांग कथन
पादाकुलक छंद
शब्द अर्थ छंद प्रस्तावहि । नायकादि गुन रीति गिनावहि ।
अलंकार रस व्यंग्य प्रमानो । सो दश काव्य के अंग बखानो ।

टीका : शब्द वही है जो कर्ण इन्द्रिय ते सुनने में आवे, वह दो तरह के होते हैं, एक वही कि जो वर्णात्मक होय जैसे राम शिवादिक, दूसरा वह है कि जो ध्वन्यात्मक । वह जैसे नगाड़ा आदि क बजते हैं । अर्थ वह है कि जिससे वस्तु का बोध हो । छंद वह है कि जिसमें पद का नियम हो । प्रस्ताव वह है कि जिसे प्रकरण कहत हैं, जिसका हाल कहा जाय वह आदि ते अंत तक निवाहा जाय । नायका स्त्री वर्णन जो है सो है । परंतु दूती कर्म जो करे सो दूती होगी वह

१- वक्रोक्ति विनोद, ह०प्र०सं० १५५ पृ० ४, ५ छं० ११ ।

नायका में नहि गिनना चाहिये। तैसे स्वयंदूतिका नायका दूती न होगी। उनको नायका में गिनना चाहिये। गुन तीन है माधुर्य, ओज, और प्रसाद वह गुन कहा जाता है। शक्ति, निपुणता, लोकमत, व्युत्पत्ति, अभ्यास और प्रतिभा यह ६ प्रकार की रीति हैं। वह रीति के लक्षण : शक्ति वह है कि जो ईश्वर इच्छाते शास्त्र शास्त्र पढिवे ते काव्य बनाने की सामर्थ होय। निपुणता पद पदार्थ का शीघ्र बोध होना सो निपुणता है। लोकमत, लोककथन, लोकरीबाज सो व्युत्पत्ति पद अलग करना सो व्युत्पत्ति है अभ्यास। हर एक तरह की बात कंठ करना किवा रखना अथवा शिखना सो अभ्यास है। प्रतिभा। पुराने पद। काव्य के समान नया पद काव्य कथन करना वह प्रतिभा है। अलंकार दो प्रकार के हैं, शव्दालंकार, अर्थलंकार। रस यह शृंगारादि नव प्रकार के हैं। और व्यंग्य व्यंजक शब्द का अर्थ वह व्यंग्य। यह ग्रंथों में काव्य के दश अंग कहाते हैं।[1]

इस उद्धरण के पढने मात्र से स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा मान्य काव्य के दशांग तथा उनका विवेचन संस्कृत के आचार्यों के अनुसार नहीं है। यद्यपि उनके द्वारा मान्य काव्य के दशो अंगों का वर्णन किसी न किसी रूप में प्राचीन काव्य शास्त्रीय ग्रंथों में मिलता है। परन्तु जिस प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई ने उनको व्याख्या की है, वह न संस्कृत के प्रतिनिधि आचार्यों के ग्रंथों में मिलती है न हिन्दी के प्रमुख आचार्यों की रचनाओं में। गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा संगृहीत हिन्दी के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में एक हस्तलिखित प्रति में विश्वनाथ सिंह कृत काव्य कल्पद्रुम नामक ग्रंथ में इसी प्रकार काव्य के दशांगों का उल्लेख तथा उनकी व्याख्या मिलती है। काव्य के अंगों के उल्लेख करने वाले छंद को यहां उद्धृत किया जा रहा है। क्योंकि यही छंद गोविन्द गिल्ला भाई के छंद की मूल प्रेरणा प्रतीत होता है।:-

शव्द अर्थ अरु छंद, प्रस्तावक कहुं नायका।
रीति गुण लंकृत बंद, रस सुविंग्य दश अंग ये।[2]

१-वक्रोक्ति विनोद ह०प्र०सं० १५५,पृ०५ छं० १२।

२-काव्य निरूपण ह०प्र०सं०२०६ ,पृ०१२ छं० २।

स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने काव्य के जिन दश अंगों की चर्चा की है वे उक्त छंद पर ही आधारित हैं । रीति आचार्यों की परंपरा में गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा की अपेक्षा रीति की व्याख्या विशेष रूप से महत्वपूर्ण है । क्योंकि अनेक रीतिकालीन कवियों ने रीति शब्द का प्रयोग काव्य-रचना की रीति या काव्य-रचना-पद्धति के अर्थ में किया है[१]। गोविन्द गिल्ला भाई ने यहां जिन काव्य-रचना की रीतियों का उल्लेख किया है वह पूर्णत: वैज्ञानिक न होते हुए भी रीति काल में काव्य-रचना की सामान्य पद्धति का सामान्य चित्र अवश्य प्रस्तुत करता है । काव्य-रचना रीति के अंतर्गत शक्ति, निपुणता, प्रतिभा आदि शब्दों का प्रयोग संस्कृत के आचार्यों ने काव्य-हेतु के लिए किया है, अत: प्रस्तुत प्रयोग इन शब्दों के अर्थ विकास की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही साथ ही, वह रीतिकालीन आचार्यों के मौलिक चिन्तन-शक्ति का प्रमाण भी माना जा सकता है । रीतिकालीन काव्य तथा आचार्य परम्परा में गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा काव्य के दशांगों की उक्त व्याख्या अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होती । हां, उसे पूर्णत वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता ।

गोविन्द गिल्ला भाई ने काव्य-भेदों का जो वर्णन किया है वह मूलत: संस्कृत के आचार्यों की मान्यताओं के अनुसार ही है । श्रव्य काव्य के गद्य-पद्य नामक भेद कर के उन्होंने गद्य के मुक्तक, वृत्तिगंधि, उत्कलिका और चूर्णक नामक भेद किये हैं । तथा पद्य-काव्य को उत्तम, मध्यम और अधम काव्य के रूप में वर्गीकृत किया है[२]। स्पष्ट है कि गद्य के उक्त भेद विश्वनाथ के अनुसार हैं[३], तथा पद्य के उक्त भेद मम्मट के अनुसार[४]। परन्तु मम्मट के अनुसार काव्य चाहे वह पद्य काव्य हो या गद्य काव्य तीन प्रकार का होता है, जबकि गोविन्द गिल्ला भाई ने उत्तमादि भेद केवल पद्य-काव्य के ही माने हैं[५]। वैसे मम्मट के समान ही गोविन्द गिल्ला भाई ने भी

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षष्टम अध्याय-सं० डा०नगेन्द्र, पृ० १७६ ।

२- वक्रोक्ति विनोद ह०प्र०सं० १५५, पृ०६ से १३ क्रं० १३ से ४१ ।

३- तुलनीय है : साहित्य दर्पण ६।३३०,३३१ -विश्वनाथ ।

४- ,, : काव्यप्रकाश - मम्मट १।५,६ ।

५- ,, : वही १।५ की वृत्ति ।

उत्तमादि काव्यों का व्यावर्तक धर्म व्यंग्य ही माना है।[१] परन्तु उन्होंने मम्मट के समान अधम काव्य के शब्द-चित्र और वाच्य-चित्र नामक केवल दो ही भेद[२] नहीं माने वरन् शब्द-चित्र, अर्थ-चित्र, और शब्दार्थ-चित्र नामक तीन भेद माने हैं,[३] मम्मट के समान अधम काव्य में व्यंग्य का नितान्त अभाव उन्हें अभीष्ट नहीं है।[४]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि काव्य-लक्षण, काव्य-भेद आदि के विवेचन में गोविन्द गिल्ला भाई ने परम्परा-मूलक मौलिकता का अच्छा परिचय दिया है। हिन्दी के विविध काव्यांग निरूपक आचार्यों के समान उन्होंने काव्य के विविध अंगों का सुस्पष्ट विवेचन किया है तथा उन्हीं के अनुसार उन्होंने रस को ही काव्य की आत्मा माना है।[५] परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने संस्कृत या हिन्दी के किसी आचार्य विशेष का अन्धानुकरण नहीं किया है। उन्होंने अपने विवेच्य विषय की सामग्री विभिन्न स्रोतों से संग्रहीत की है, और उसे अपनी स्वतंत्र बुद्धि के अनुसार अपने ग्रंथों में रखा है। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से रीतिकालीन आचार्यों की परम्परा में गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व का वैशिष्ट्य सिद्ध किया जा सकता है।

२- रस लक्षणादि वर्ग

गोविन्द गिल्ला भाई के ग्रंथों में रस का विवेचन अत्यन्त गौण रूप से मिलता है। उन्होंने किसी भी ग्रंथ में रस का स्वतंत्र रूप से विवेचन नहीं किया है। शृंगार सरोजिनी नामक रचना में जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कवि का मूल प्रयोजन नायिका भेद वर्णन करना था। परन्तु ग्रंथ को विवेचन की दृष्टि से

१- तुलनीय है : वक्रोक्ति विनोद ह०प्र०सं० १५५ पृ०७ छं० २३।

२- ,, : काव्य प्रकाश - मम्मट १।४।

३- ,, : वक्रोक्ति विनोद ह०प्र०सं० १५५ पृ०६, १० छं० २८ से ३१।

४- ,, : वही, पृ० २० छं० ३१ और टीका तथा काव्य प्रकाश - मम्मट १।४,५ तथा हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य-डा०सत्यदेव चौधरी, पृ०८९

५- ,, : श्लेष चंद्रिका ह०प्र०सं० १५५, पृ०५८ छं०६,
: अलंकार अंबुधि ह०प्र०सं० १६५ पृ० ३ से ४।

पूर्णता प्रदान करने के लिए उन्होंने उसमें शृंगार - रस का विवेचन भी किया है। परन्तु उसमें भी उन्होंने शृंगार के सभी अंगों का विवेचन नहीं किया है । श्लेष चंद्रिका तथा अलंकार अंबुधि नामक रचनाओं में रस का एकाध स्थान पर कुछ विवेचन मिलता है । `भक्ति कल्प द्रुम `नामक रचना में भक्ति और रस के संबंध की चर्चा करते हुए गोविन्द गिल्ला भाई ने नौ रसों के स्थान पर द्वादश रसों का उल्लेख किया है[१] । उनके अनुसार द्वादश रस इस प्रकार हैं, १- शृंगार, २- हास्य, ३- करुण, ४- रौद्र, ५- वीर, ६- भयानक, ७- वीभत्स, ८- अद्भुत, ९- शांत, १०-दास्य, ११ -सख्य, १२ -वात्सल्य । गोविन्द गिल्ला भाई ने भक्ति में केवल शृंगार, शांत, सख्य, दास्य और वात्सल्य को ही माना है[२] । अन्यत्र उन्होंने परम्परानुसार नौ रसों का ही उल्लेख किया है[३] । उन्होंने रस का लक्षण इस प्रकार दिया है :

१- मिलि विभाव अनुभाव पुनि सात्त्विक अरु संचारि ।
पंचम स्थाई भाव ते रस उपजत निरधारि ।

२- काव्य नृत्य देखत सुनत लोन वाहि में होय ।
भूलत औरे भान कों कोऊ कहत रस सोय[४] ।

स्पष्ट है कि प्रथम लक्षण भरत के प्रसिद्ध रस-सूत्र `विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः `पर आधारित है और द्वितीय रस-चर्वणा,[५] की स्थिति को स्पष्ट करता है[६] । गोविन्द गिल्ला भाई ने शृंगार रस को सभी रसों में अति उत्तम माना है । परन्तु शृंगार रस का उन्होंने जो लक्षण दिया है वह कुछ परम्परा से भिन्न है । उन्होंने लिखा है कि :

१- भक्ति कल्पद्रुम ह०प्र०सं० १५३, पृ० ९ छं० ५७, ५८ ।

२- वही, पृ० ९ छं० ६० ।

३- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १९१ पृ० १ छं० ७ ।

४- वही, पृ० १ छं० ५, ६ ।

५- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६१५ ।

६- शृंगार सरोजि[illegible] प्र०सं० १९१ पृ० १ छं० ८ ।

शृंग कहत है मुख्य कौं आ समुचय निरधार ।
बढनो वपु में काम को ताकौं कहत रकार ।
काम समूह की मुख्यता जामें होय अपार ।
गोविंद ताकों कहत हैं कोविद सब शृंगार ।[1]

इन दोहों में से प्रथम में गोविन्द गिल्ला भाई ने शृंगार शब्द की व्युत्पत्ति देने का प्रयास किया है तथा द्वितीय में लक्षण, जो दोनों ही परंपरानुसारी न होते हुए, वैज्ञानिक भी नहीं कहे जा सकते ।

परम्परानुसार गोविन्द गिल्ला भाई ने शृंगार के दो ही भेद संयोग और वियोग माने हैं[2] । संयोग शृंगार के वर्णन के प्रसंग में उन्होंने भावोत्पत्ति और भाव-लक्षण की चर्चा भी की है, जो इस प्रकार है :

सो संयोग शृंगार में दंपति के मन मांहि ।
उपजत कछुक विकार जिहि सोइ भाव कहाय ।
महिला के मन में प्रथम प्रगटी कछुक विकार ।
ओपत अंतर मांहि जिहि सोइ भाव निरधार ।[3]

स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई के उक्त दोनों दोहों में विरोध है, क्योंकि प्रथम दोहे में उन्होंने भावोत्पत्ति के वर्णन में दंपति के मन के विकारों को भाव कहा है जबकि द्वितीय में केवल महिला नायिका के मनोविकारों को भाव कहा है । भरत ने जिस प्रकार अपने नाट्य-शास्त्र में भाव का लक्षण दिया है संस्कृत के परवर्ती आचार्यों ने उससे भिन्न ही भाव का लक्षण दिया है ।[4] हिन्दी के आचार्यों ने भाव का स्पष्ट विवेचन कम ही किया है,[5] अत: हिन्दी

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१ पृ० ६१ क्रं० ७५७, ७५८ ।
२- वही, पृ०६१ क्रं० ७५६, ७६० ।
३- वही, पृ०६२ क्रं०७६५, ७६६ ।
४- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ५४५, ५४६ ।
५- ,, : वही, पृ० ५४६ ।

आचार्यों की परम्परा में गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा किया गया भाव का उक्त विवेचन स्वाभाविक ही कहा जायेगा ।

दंपति के मनोविकार जब नेत्रादिक से प्रकट हो जाते हैं तो उन्हें गोविन्द गिल्ला भाई ने हाव कहा है,[१] जिनकी संख्या उन्होंने १४ मानी है, जो इस प्रकार हैं[२] : लीला, ललित, विभ्रम, विलास, किलकिंचित, कुट्टमित, मोट्टायत, मद, बोधक, विच्छित्ति, मौग्ध्य, विहृत, हेला और बिब्बोक। हिन्दी के आचार्यों ने इन्हें हाव ही कहा है परन्तु उनकी संख्या तथा वर्गीकरण के विषय में आचार्यों में मतैक्य नहीं है[३] ।

गोविन्द गिल्ला भाई ने वियोग शृंगार के वर्णन में पूर्वराग, मान और प्रवास नामक वियोग शृंगारों का वर्णन तथा प्रवास के अंतर्गत परम्परा प्राप्त काम की दश दशाओं का भी विवेचन किया है,[४] परन्तु उसमें कुछ भी उल्लेखनीय नहीं है, पहले इनकी चर्चा भी की जा चुकी है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने रस का विवेचन बड़ा ही चलता किया है तथा शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य किसी रस की चर्चा नहीं की है । परन्तु रस आदि के विषय में उन्होंने जो भी लिखा है वह मूलत: परम्परानुमोदित है तथा जहां उन्होंने कुछ नवीनता प्रदर्शित की है वहां कुछ न कुछ त्रुटियां भी मिल जाती हैं ।

३- छंद लक्षणादि वर्ग

गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने 'गोविन्द हजारा' नामक संग्रह ग्रंथ में कवित्त सवैया छंदों की सविस्तार चर्चा की है। कवित्त सवैया न केवल गोविन्द गिल्ला भाई के प्रिय छंद हैं वरन् रीतिकालीन कवियों के भी सर्वाधिक प्रिय

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१ पृ०६२ छं० ७६८ ।

२- वही, पृ०६३ छं० ७७०, ७७१ ।

३- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ०८३३ ।

४- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१, पृ०६८ से १०७ ।

छंद है।[१] गोविन्द गिल्ला भाई की काव्य-कला की चर्चा के प्रसंग में इन छंदों की परम्परा और स्वरूप आदि के विषय में विचार किया जा चुका है, अत: यहां संक्षेप में ही इन छंदों के विषय में विचार किया जायेगा।

गोविन्द गिल्ला भाई ने सवैया छंद को कोई सामान्य परिभाषा नहीं दी है। परन्तु उसके विषय में उन्होंने लिखा है कि २२ अक्षर से २६ अक्षर तक के सवैया छंद होते हैं,[२] आगे उन्होंने २२ अक्षर के एक सवैया मदिरा, २३ अक्षर के तीन सवैया, इन्द्र विजय, चित्रपदा, मालिका, २४ अक्षर के पांच सवैया किरीट, अलसा, दुर्मिला, माधवी, वाम, २५ अक्षर के तीन सवैया सुमिला, सुधा,[३] विद्या तथा २६ अक्षर के एक सवैया मालती का सविस्तार वर्णन किया है। गोविन्द गिल्ला भाई ने मात्रिक सवैया भी माने हैं तथा ३१ मात्रा के एक सवैया इकतीसा और ३२ मात्रा के एक सवैया बत्तीसा सवैयों का विवेचन किया है।[४] अन्त में गोविन्द गिल्ला भाई ने सवैया के विषय में लिखा है कि पिंगल के अनुसार और भी अनेक प्रकार के सवैया होते हैं, परन्तु जो सवैया की चाल पर चलते हैं उन्हीं को यहां स्वीकृत किया गया है।

सवैया के पश्चात् गोविन्द गिल्ला भाई ने कवित्त का विवेचन किया है, जिसमें २७ से १०० वर्ण तक के दंडकों का उल्लेख किया है।[५] उनके अनुसार जिसमें गण और वर्ण का कोई नियम नहीं, वह दंडमक होता[६] है, और जिसमें गण और वर्ण का नियम न हो, वह मुक्तक कहलाता है। आगे उन्होंने मनहरन, जनहरन, रूपघनाक्षरी, कलाधर, जलहरन, डमरू और कृपान नामक मुक्तकों तथा नीलचक्र, अशोक पुष्पमंजरी, सुधानिधि तथा अंनगशेखर नामक दंडकों का लक्षणोदाहरण के रूप में विवेचन किया है।[७]

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग, सं०डा० नगेन्द्र, पृ० २१६।

२- गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३, पृ०१६, छं०८५।

३- वही, पृ० १६ से २१।

४- वही, पृ०२२ छं० १२२।

५- वही, पृ० २३ छं० १२३।

६- वही, पृ०२३ छं०१२४, पृ०२६, छं०१४१।

७- वही, पृ०२६ से ३०।

गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्त सवैया के विवेचन में विषय की सुस्पष्टता के साथ साथ जो बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है वह है, उनकी तुलनात्मक दृष्टि। इस विवेचन में उन्होंने छंद पयोनिधि पिंगल, काव्यार्णव पिंग, वृत्त चंद्रिका, छंद प्रभाकर, छंदोनिधि पिंगल, छंद मंजरी आदि अनेक ग्रंथों का नामोल्लेख के साथ उनके कवित्त सवैया विषयक मतों का विवेचन किया है तथा इन छंदों के विविध भेदों के विविध लेखकों द्वारा मान्य नामों का उल्लेख भी किया है।[१] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने हिन्दी के केवल दो ही छंदों का विवेचन किया है परन्तु वह अपने आप में पूर्ण कहा जा सकता है। उनकी तुलनात्मक दृष्टि रीति आचार्यों की परम्परा में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

४- भाषादि वर्ग

गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने 'गोविन्द हजारा' में भाषा, हिन्दी भाषा, वाणी या उक्ति, और तुक के विषय में संक्षिप्त विचार किया है। कदाचित् भिखारीदास के पश्चात् गोविन्द गिल्ला भाई ही ऐसे रीति आचार्य हैं जिन्होंने अपनी काव्य-भाषा के विषय में विचार किया है। वैसे भिखारीदास ने अपने समय की प्रमुख काव्य-भाषा ब्रजभाषा के विषय में लिखा है,[२] उसी प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने युग में प्रचलित हिन्दी भाषा के विषय में लिखा है।

हिन्दी भाषा का लक्षण देने से पूर्व गोविन्द गिल्ला भाई ने भाषा का एक सामान्य लक्षण भी दिया है, जो आधुनिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी तर्कसंगत कहा जा सकता है। उन्होंने लिखा है कि :

१- तुलनीय है : गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३ पृ०२४, २६, २८, २९।
२- ,, : हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० ८३।

मिली परसपर मानवी उर इच्छा समुभान ।
बोलत मुख ते बोल जिहि सो भाषा सुखदान ।[1]

उन्होंने देश भेद के अनुसार भाषा-भेद के सिद्धान्त का भी उल्लेख किया है।[2] परन्तु हिन्दी को सारे हिन्दुस्तान की भाषा मान कर उसे भारत की राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकृत किया है।[3]

गोविन्द गिल्ला भाई ने उर्दू को यवन प्रयुक्त हिन्दी कहा है,[4] तथा उसमें अरबी फारसी के शब्द बाहुल्य का भी उल्लेख किया है।[5] उनके अनुसार हिन्दी के दो भेद हैं, एक ब्रजभाषा, दूसरी खड़ीबोली, जो क्रमश: पद्य और गद्य के लिए प्रयुक्त होते हैं।[6] इस प्रकार न केवल उन्होंने भाषा की वैज्ञानिक परिभाषा दी है वरन् अपने युग में हिन्दी की यथार्थ स्थिति का वर्णन भी किया है, जो रीति आचार्यों की परम्परा में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

भाषा विचार के पश्चात् गोविन्द गिल्ला भाई ने 'गोविन्द हजारा' में तुक विचार किया है। हिन्दी में तुक के विषय में सर्व प्रथम विचार भिखारी दास द्वारा अपने काव्य निर्णय के इक्कीसवें उल्लास में मिलता है। बाद में राम सहाय की वृत्त मंजरी तथा जगन्नाथप्रसाद भानु के छंद प्रभाकर में भी तुक विचार किया गया है।[7] यद्यपि ये तीनों लेखक गोविन्द गिल्ला भाई के पूर्ववर्ती हैं परन्तु उन्होंने अपने तुक विचार में भिखारीदास का ही अनुसरण किया है। हिन्दी की रीति परम्परा के अनुसार गोविन्द गिल्ला भाई ने ब्रजभाषा काव्य

१- गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३ पृ०२ छं० ६ ।
२- वही, पृ०२ छं० १० ।
३- वही, पृ०२ छं० १० ।
४- वही, पृ० २ छं० ११ ।
५- वही, पृ०२ छं० १२ ।
६- वही, पृ०२ छं० १४ से १५ ।
७- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३२५ ।

में तुक को अनिवार्य माना है तथा बिना तुक के काव्य को झूठा काव्य कहा है[१]। तुक के उर्दू नाम काफिया, संस्कृत नाम अनुप्रास तथा हिन्दी नाम तुक का उल्लेख[२] कर उन्होंने भिखारीदास के अनुसार[३] तुक के निम्नलिखित भेद किये हैं[४] :

तुक

उत्तम तुक	मध्यम तुक	अधम तुक
१- समसरि	१- असंयोग मिलित	१- अमिल सुमिल
२- विषमसरि	२- स्वर मिलित	२- आदि मत्त अमिल
३- कष्टसरि	३- दुर्मिल	३- अंत मत्त अमिल

तुक का दूसरा वर्गीकरण भी गोविन्द गिल्ला भाई ने दिया है[५] जो इस प्रकार है :

तुक

वीप्सा तुक　　यामकी तुक　　लाटिया तुक

गोविन्द गिल्ला भाई ने तुक के विचार में भिखारीदास का अनुसरण इतना अधिक किया है कि कुछ स्थानों पर उन्होंने भिखारीदास के उदाहरण भी उद्धृत कर दिये हैं[६]। तुक विचार के पश्चात गोविन्द गिल्ला भाई ने बानी और उक्ति का विचार किया है। हिन्दी रीति ग्रंथों में इस प्रकार के उक्ति विचार का कहीं उल्लेख नहीं सुना है। गोकुल कवि के 'दिग्विजय भूषण'

१- तुलनीय है : गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३ पृ०३,छं०१९,२० ।

२- ,, : वही,पृ०३,छं०२१ ।

३- ,, : काव्य निर्णय - भिखारीदास १९।६ ।

४- गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३,पृ०३ से ७ ।

५- वही, पृ० ७, ८ ।

६- वही, पृ० ६, ७, ८ ।

ग्रंथ की भूमिका में संपादक ने उनके अन्य ग्रंथों की जो विषय सूची दी है उसमें गोकुल कवि के अष्टयाम प्रकाश नामक ग्रंथ में बानी भेद का उल्लेख है।[१] परन्तु उक्त रचना को देखे बिना उसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु इतना भी निश्चित है कि गोविन्द गिल्ला भाई का बानी उक्ति विचार उनकी नितान्त मौलिक उद्भावना भी नहीं है। क्योंकि एक तो उन्होंने स्वयं लिखा है कि:

तामें से पुनि उक्ति को कविता मांहि प्रचार।
कहत आप कवि कुल सबै देखो ग्रंथ मझाई।[१]

दूसरे उनके आचार्यत्व में ऐसी कोई बात नहीं मिलती जो परम्परा संमत न हो। अत: उनका बानी और उक्ति विचार भी किसी अज्ञात स्रोत पर आधारित माना जा सकता है।

संस्कृत साहित्य की सर्वविदित परा, पश्यंति, मध्यमा और वैखरी नामक चार प्रकार की बाणियों का उल्लेख कर गोविन्द गिल्ला भाई ने बाणी या भाषा का लक्षण दिया है।[३] तथा काव्य में प्रचलित चार प्रकार की उक्तियों, जिन्हें उन्होंने काव्य के चार मुख भी कहा है,[४] का वर्णन किया है।[५] उन्होंने श्रीमुख उक्ति, जिसमें काव्य का पात्र अपने मुख से अपने प्रति कुछ कहता है, सन्मुख, जिसमें काव्य का कोई पात्र काव्य के किसी अन्य पात्र से बात करता है, परमुख, जिसमें किसी की बात कोई किसी अन्य व्यक्ति से कहता है तथा परामुख जिसमें किसी वर्णनीय वस्तु का वर्णन कवि के बिना कोई अन्य पात्र करता है, का वर्णन लक्षणोदाहरण के साथ किया है।[६] उन्होंने उक्त उक्तियों का वर्गीकरण भी किया है तथा टीका लिख कर उसे स्पष्ट भी किया है।[७] उनके उक्ति विचार को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

१- दिग्विजय भूषण - भूमिका, पृ०५ सं० डा० भगवतीप्रसाद सिंह।

२- गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३,पृ०६ छं० ५०।

३- वही, पृ०८, छं० ४६।

४- वही, पृ० ६, छं० ५३।

५- वही, पृ० ६ छं० ५५।

६- वही, पृ० ६ से १२। ७- वही, पृ० ६ से १२।

उक्ति

श्रीमुख	सन्मुख	परमुख	परामुख
१- कल्पित	१- शुद्ध	१- शुद्ध	१- परमुख
२- साक्षात	२- गर्भित	२- गर्भित	२- सन्मुख

उपसंहार

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई रीतिकालीन कवियों के विपरीत कवि की अपेक्षा अपने आचार्यत्व में अधिक सफल हैं। संस्कृत आचार्यों का उन्होंने यद्यपि अनुगमन किया है परन्तु मूलत: वे रीतिकालीन आचार्यों की परम्परा में ही आते हैं। उनके आचार्यत्व का संपूर्ण विस्तार परम्परानुसारी होते हुए भी अनेक स्थानों पर मौलिक उद्भावनाओं से युक्त है। उन्होंने न संस्कृत आचार्यों का अन्धानुकरण किया है और न हिन्दी आचार्यों का। अपने विषय की सामग्री के संचयन, विवेचन तथा संयोजन में कवि ने पर्याप्त स्वतंत्र संचयन बुद्धि का परिचय दिया है, तथा विवेचन में सुस्पष्टता एवं मौलिकता के साथ साथ उन्होंने यत्र-तत्र तुलनात्मक दृष्टि का भी परिचय दिया है।

आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की विचारधारा का साधिकार अध्ययन किया था, परन्तु उन्होंने कहो भी अन्धानुकरण की प्रवृत्ति का परिचय नहीं दिया है। अलंकार एवं नायिका भेद यद्यपि उनके प्रिय विषय थे परन्तु उन्होंने जितने भी विषयों का विवेचन किया है, उन सभी विषयों के विवेचन में उन्होंने समान रूप से अपने अधिकार तथा सुस्पष्ट विवेचना शैली का परिचय दिया है। अत: गोविन्द गिल्ला भाई को एक सफल आचार्य कहा जा सकता है।